श्रीगौरगोविन्दार्च्चनपद्धतिः

सिद्ध श्रीकृष्णदास तातपाद विरचिता

हरिदास शास्त्री

प्रकाशक—श्रीहरिदास शास्त्री
अध्यक्ष
मानव चैतन्य शिक्षा समिति (रजि०)
श्रीहरिदास निवास
कालीदह वृन्दावन

प्रथम संस्करण १००० प्रति
सं० २०३४ श्रीकृष्ण जयन्ती
२० भाद्र १३८४
६।९।७७

प्रकाशन साहाय्य
३ रुपया ५० न पै

मुद्रक—
श्रीहरिदास शास्त्री
श्रीगदाधर गौरहरि प्रेस
श्रीहरिदास निवास कालीदह-वृन्दावन
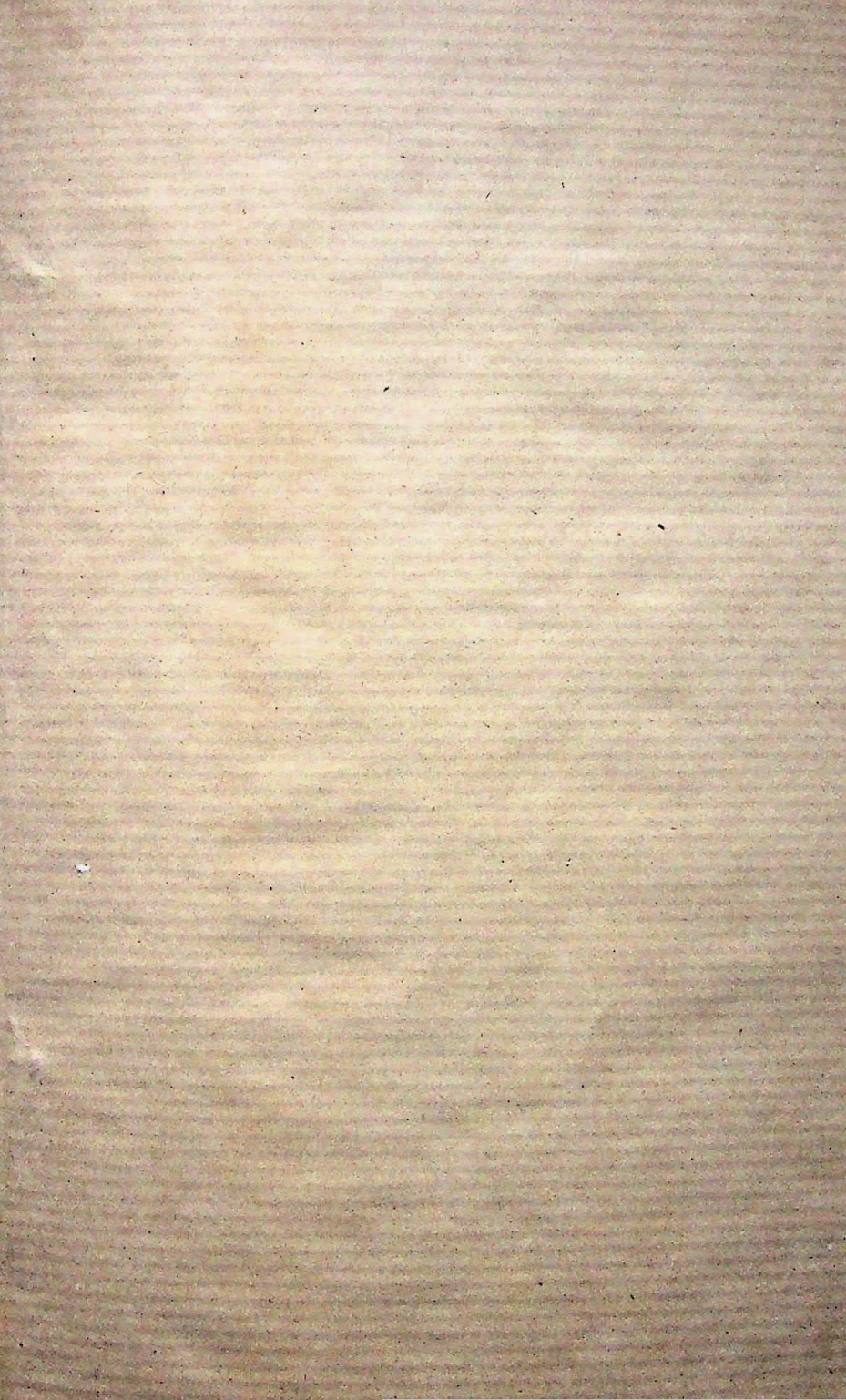
श्रीगौरगोविन्दार्च्चनपद्धतिः

✲ सिद्ध श्रीकृष्णदास तातपाद विरचिता ✲

श्रीधाम वृन्दावनस्थ खेलातीर्थ वास्तव्येन
न्याय वैशेषिक शास्त्री, नव्यन्यायाचार्य्य, काव्य, व्याकरण,
सांख्य- मीमांसा-वेदान्त, तर्क-तर्क-तर्क-वैष्णवदर्शन तीर्थ
विद्यारत्नादि विरुदावल्यङ्कृतेन
श्रीहरिदास शास्त्रिणा
सम्पादिता

सद्ग्रन्थ प्रकाशक—
श्रीगदाधर गौरहरि प्रेस
श्रीहरिदास निवास
कालीदह वृन्दावन

स्वयमाविर्भूत विग्रह
श्रीराधारमण लालजी महाराज
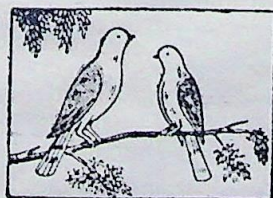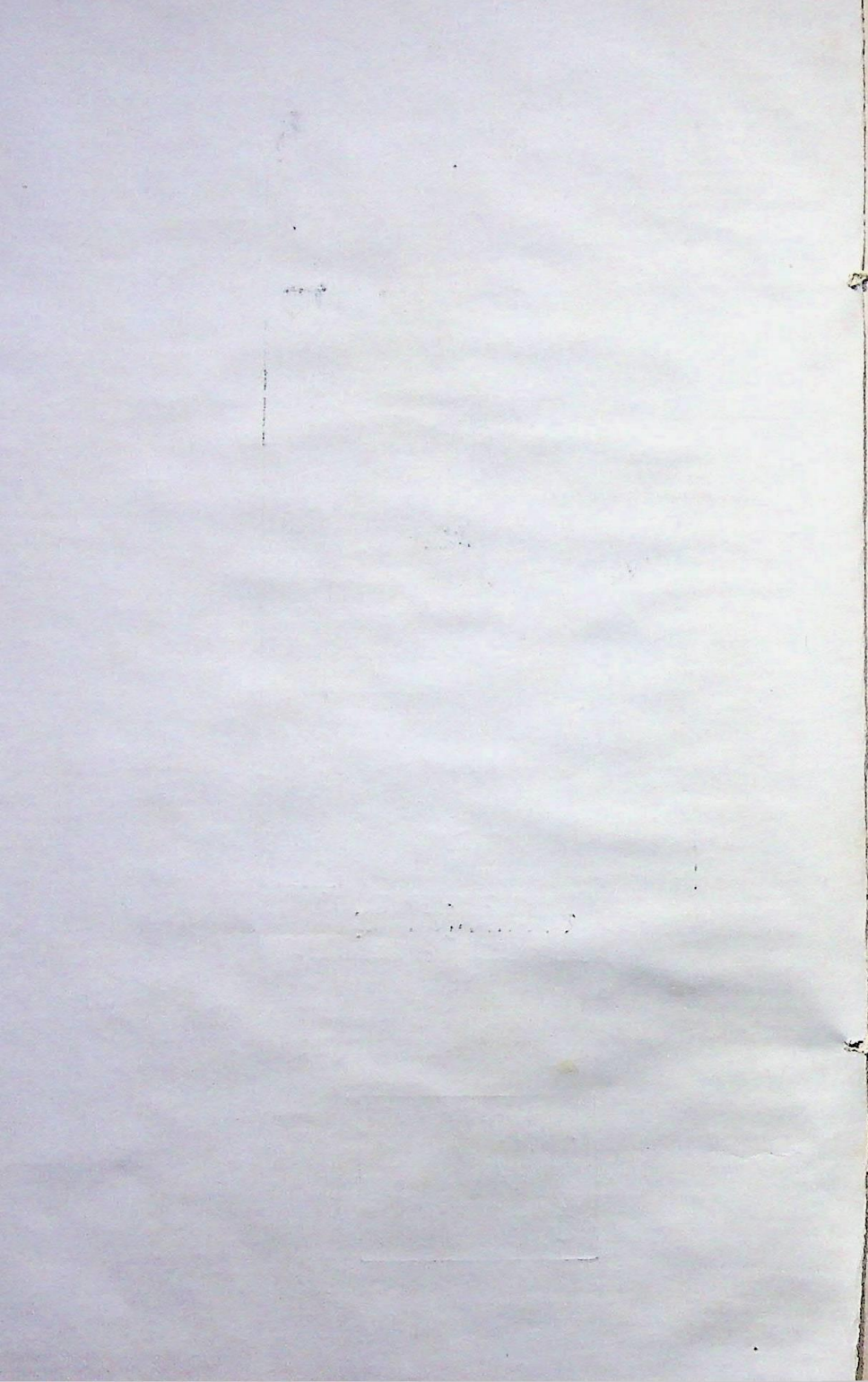
★ श्रीश्रीगदाधर-गौराङ्गौ जयतः ★

पूर्वभाष

रसराज महाभाव विग्रह श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु के परिकर श्रीमत् सिद्ध कृष्णदास तात पाद ही प्रस्तुत पद्धति ग्रन्थ की रचयिता हैं, ग्रन्थकार के मतमें ग्रन्थ का नाम श्रीश्रीगौर-गोविन्दार्च्चन पद्धति, "श्रीश्रीकृष्णस्वरूप निरूपण है, यह ग्रन्थ साधनामृत-चन्द्रिका नामक अष्ट यामिक पूजा पद्धति एवं स्मरण प्रणाली संसूचक ग्रन्थका प्रथम विभाग है, इसमें श्रीमद् भागवत, उज्ज्वलनीलमणि, ब्रह्मसंहिता, पद्मपुराण, सनत्कुमारसंहिता, गौतमीयतन्त्र, लघुभागवतामृत, भक्तिरसामृतसिन्धु, श्रीगोविन्दलीलामृत, रागवर्त्मचन्द्रिका, श्रीकृष्णगणोद्देशदीपिका एवं श्रीध्यानचन्द्रपद्धति से सपरिकर श्रीकृष्ण के स्वरूप, वर्ण, वेश, वयस प्रभृति का यावतीय तथ्य क्रमपूर्वक सुविन्यस्त हुए हैं, रचनाकाल १७५० शकाव्दा है।

श्रीश्रीगौड़ेश्वर वैष्णव वृन्द ब्राह्म मुहूर्त्त से नक्त पर्य्यन्त जागरण शयनादि निखिल अवस्थामें अनवरत परम मधुर श्रीहरिनाम संकीर्त्तन के साथ ही श्रवण मननादि भक्तयङ्ग अवलम्बन द्वारा श्रीकृष्ण भजन के लिए साधक को उपदेश किए हैं।

अष्ट याम श्रीनाम कीर्त्तन, अर्च्चन मननादि का सुशैली पूर्वक वर्णन जिस ग्रन्थमें है, वह ही पद्धति नाम से ख्यात है, श्रीगौड़ेश्वर वैष्णव सम्प्रदाय में अनेकविध पद्धति पुस्तक होने परभी सर्वसम्मति से मुख्यतः प्रस्तुत पद्धति ग्रन्थ ही सर्वत्र साधक समाज में समादृत है।

प्रेमभक्ति कादम्बिनी संप्लावितान्तःकरण श्रीश्रीकृष्णचैतन्यानुग पार्षदवृन्द विरचित निखिल ग्रन्थरत्न की भावधारा विशुद्ध भजन पथ निर्देश के लिए प्रेमभक्ति संसूचन एवं रसराज-महाभाव-मूर्त्त श्रीविग्रह की प्रेमसेवा परिपाटी-दिग्दर्शन के लिए ही हैं, इस विषय में किसी का भी मतद्वैध नहीं है, इन सब का अन्तिमानुबन्ध प्रेम ही है, मुक्ति एवं त्रिवर्ग नही है, प्रेम नित्य सिद्ध परमानन्द मूलक भाववर्य्य है, सान्द्रानन्द-विशेषात्मा, सम्यङ्मसृणित-स्वान्तः ममत्वातिशयाङ्कित रूप से जिसका सुविस्तृत विवेचन श्रीभक्तिरसामृत सिन्धु ग्रन्थमें है।

उक्त प्रेम नित्यसिद्ध होने परभी श्रवण कीर्त्तनादि शोधित चित्त-दर्पण में प्रकटित होता है, अतएव श्रीगौरेश्वर वैष्णववृन्द नवविध भक्तयङ्ग आचरण की अतिशय प्रयोजनीयता अनुभव करते हैं, यह ही प्राचीन विद्वानों का सिद्धान्त है।

**

स्मरण, नवविध भक्त्यन्तर्गत उपनिषदुक्त निदिध्यासन ही है, जहाँ तैल धारावद् अविच्छिन्न प्रवाह सन्तति द्वारा अभीष्ट ध्येय वस्तु के नाम, रूप, गुण, लीला परिकर आदि का स्फुरण, परेश में सुष्ठु आवेश, परेश व्यतीत वस्तुओं में वाह्याभ्यन्तरराग–सुविलापन भी होता है, "तस्मात् केनाप्युपायेन मनः कृष्णे निवेशयेत्" "कृष्णं स्मरन् जनञ्चास्य प्रेष्ठं निजसमीहितम्" न्याय अवलम्बन से स्वानुभूत लीलासमूह का यत् किञ्चित् मात्र दिग्दर्शन के लिए त्रिताप-तापित-कलि कलुषहत जीव समूह के प्रति हितेच्छु होकर कारुण्यैक घनाघन स्वरूप अष्ट यामिक लीलावगाहन की व्यवस्था सज्जनों ने दी है, एवं तदुपयोगी लीलारस परिवृंहित ग्रन्थ समूह का विरचन भी किए हैं, ये सव पद्धति स्व कपोल कल्पित नहीं है, पण्डितगण के निर्णय में पद्मपुराणीय पाताल खण्डस्थ द्विपञ्चाशत्तमाध्याय एवं सनत्कुमार संहिता ही उक्त अष्ट कालीन लीला का उत्स है, इसके अवलम्बन से मुख्यतः श्रीमत् कृष्णदास कविराज गोस्वामिचरण ने श्रीगोविन्द लीलामृत ग्रन्थ में, श्रील कविकर्णपूर गोस्वामिचरण ने श्रीकृष्णाह्निक कौमुदी ग्रन्थ में एवं श्रीविश्वनाथ चक्रवर्त्ती पाद ने श्रीकृष्ण भावनामृत ग्रन्थ में श्रीसिद्ध कृष्णदासतातपाद ने स्वरचित भावनासारसंग्रहग्रन्थ में अष्ट कालीन लीलाप्रवाह का विस्तार किए हैं।

अष्ट यामिक लीलाशब्द से श्रीश्रीगौरगोविन्द को अवलम्बन कर निशान्त, प्रातः, पूर्वाह्न, मध्याह्न, अपराह्न, सायाह्न, प्रदोष, नक्त भेद से दैनन्दिन लीला कलाप की ही जानना होगा। यहाँपर विशेष ज्ञातव्य यह है कि—उक्त सव लीलाग्रन्थ नित्यलीलापारावार का कण मात्र वर्णन में ही चरितार्थ हुए हैं, क्यों कि सहस्रवदन भी इन विभु की सम्पूर्ण लीला वर्णन में असमर्थ है, इसलिए महानुभाववृन्द की लीला वर्णन में भी विशेष पार्थक्य है, साधक यदि उक्त प्रदर्शित पथ के आनुगत्य से लीला विशेषमें समाकृष्ट चित्त होता है, एवं एक ही लीला के चिन्तन में दिन-रात विभोर होता है, तव कुछभी त्रुटि नहीं होगी, ऐसा आवेश ही एकमात्र काम्य है। आवेश वृद्धि की गाढ़ता-तारतम्य द्वारा ही भाव सिद्धि की अग्रगति का भी अनुमान होगा।

आगमोक्त आवाहनादि-क्रमविशिष्ट कृत्य विशेष को अर्चन कहते हैं, समस्त उपचार को मन्त्रद्वारा उपास्य को अर्पण करना अर्च्चनाङ्ग में मुख्य कृत्य है, अतएव उपास्य का परिज्ञान सलक्षण होना आवश्यक है, प्रस्तुत ग्रन्थ में लक्षण दृष्टान्त द्वारा उपास्यतत्त्वका सुविशद परिचय है।

***

श्रुति स्मृति प्रतिपादित स्वयं सिद्ध पराख्यस्वरूपशक्तिविशिष्ट अद्वय परतत्त्व है, यह परतत्त्व स्व प्राधान्यसे स्फुरित होनेपर 'पुरुषोत्तम' होते है, पराख्य शक्ति-प्राधान्यद्वारा स्फुरित होनेपर स्वयं ही धर्मादि नाम ग्रहण करते है, जैसे स्वयं पराशक्ति ही ज्ञान, सुख, कारुण्य, व माधुर्य्यादि आकार में स्फुरित होकर धर्म रूप में प्रकाशित होती है, शब्दाकार में स्फुरित होने पर श्रीभगवन्नाम व वाक्यादि रूपमें, धरित्री आकार में स्फुरित होने से धामरूप में एवं ह्लादिनीसार-समवेत-सम्विदा-त्मक प्रेयसीरत्न रूपमें स्फुरित होकर श्रीराधादि स्वरूपमें विभाषित होते हैं, श्रेष्ठ तत्त्व-स्वयं भगवान सर्वावतारी, सर्वकारण कारण श्रीव्रजेन्द्रनन्दन एवं तदीय आविर्भाव विशेष श्रीकृष्णचैतन्य है।

वैष्णवाचार्यगण परतत्त्व को निरुपाधि प्रीत्यास्पद मात्र ही कहते है, गौड़ीय वैष्णवाचार्य के मतमें ही सर्वप्रथम ऐश्वर्य्यगन्धहीन माधुर्य की वार्त्ता उत्कीर्ण हुई है। ऐश्वर्य्यगन्ध रहने से प्रीति शैथिल्य स्वाभाविक है। गोलोक में देवलीला, शुद्धनरलीला नहीं है, गोलोक में भी ऐश्वर्य्य का आभास है, शुद्धमाधुर्य्य केवल व्रजमें ही है। "व्रजे व्रजेन्द्रनन्दन स्वयंरूप" स्वयं रूपे एक कृष्ण व्रजे गोपमूर्त्ति,, स्वरूप विग्रह कृष्णेर केवल द्विभुज" 'नरवपु ताहार स्वरूप, "गोपवेश वेणुकर, नवकिशोर नटवर" रूपमें श्रीकृष्ण नित्य ही अवस्थित है, "भूषणेर भूषण अङ्ग ताहे ललित त्रिभङ्ग, तार उपरे भ्रूधनुनर्त्तन"। जैसे गोपवेश, द्विभुज, नवकिशोर वेणुकर, ललित त्रिभङ्ग मूर्त्ति श्रीकृष्ण के अनन्यसिद्धरूप है, स्वयंरूप है, वैसे अजन्य स्वत.सिद्ध भाव भी श्रीकृष्ण का स्वरूप है। यह स्वरूप–श्रीकृष्ण का असमोर्द्ध माधुर्य्य को छोड़कर और कुछ नहीं है, यह स्वद्रष्ट्र जनमात्र का ही रत्युत्पादक वस्तुधर्म विशेष है।

माधुर्य्य दर्शन ही जनमानसमें स्वभावत: प्रीति-उत्पादनकरता है, श्रीकृष्ण नित्य निरुपाधि माधुर्य्य विग्रह होने के कारण नित्य निरुपाधि प्रीति का विषय है, स्वरूप साक्षातकार पर पुरुषार्थ, ऐश्वर्य साक्षात्-कार परतर पुरुषार्थ, माधुर्य्य साक्षात्कार परतम पुरुषार्थ है, माधुर्य्य साक्षात्कार के विना अन्यविध साक्षात्कार असाक्षात्कार के तुल्य है।

कृष्ण विना अन्य उपासना नाहि भाय" परम मधुर गुप्त व्रजेन्द्र कुमार" माधुर्य्य भजन की वार्त्ता श्रीरूप-श्रीजीवादि वैष्णवाचार्यगण मुक्त कण्ठ से उद्घोषित किए है।

श्रीकृष्ण के चतु:षष्टि प्रधान गुणों के मध्यमें सम्राट् व चूड़ामणि-'माधुर्य्य' है। माधुर्य्य शब्दसे मनोहरत्व ही ध्वनित है, मोहनत्व,

*****

रञ्जकत्व, एवं द्रावकत्व भी माधुर्य्य है, "माधुर्य्य नाम शील, गुण, रूप, वयोलीलानां सम्बन्ध विशेषाणाञ्च मनोहरत्वम्" श्रीकृष्ण रसविग्रह होने के कारण ही माधुर्य्य विग्रह है, यह सब ह्लाद शक्ति की वृत्ति है, स्वयंरूप श्रीकृष्ण विग्रहमें ह्लाद शक्ति का सर्वापेक्षा आधिक्य एवं प्राचुर्य है, इसलिए श्रीकृष्ण विग्रह भी मधुरतम एवं श्रीकृष्ण माधुर्य्य भी असमोर्द्ध, अनन्त, असीम है, यह सिद्धान्त ही श्रीचैतन्य मुखोद्गीर्ण है, एवं अनुभव कर्त्ता ऋषि श्रीरूप-जीवादि आचार्य्यवृन्द है।

गौड़ीय वैष्णव के उपास्य केवल श्रीकृष्ण नही है, गोपीभाव अथवा कान्ताभावसे श्रीकृष्णोपासना भी गौड़ीय वैष्णवों का काम्य व आदर्श नही हैं, इनके मतमें श्रेष्ठ उपास्य युगल राधाकृष्ण नाम है, सखी भावसे श्रीराधाकृष्ण भजन ही जीव के लिए एकमात्र साध्य वस्तु है, सखी शब्द पारिभाषिक है, अर्थात् सखीशब्द नित्य सखी कस्तुरी मञ्जरी आदि का वाचक है, येसब गौड़ीय वैष्णवों का आदर्श है, श्रीराधाजी के वाक्य से असमोर्द्ध आदर्श सप्रमाण हुआ है, वाक्य इस प्रकार है—

तृप्तावन्य जनस्य तृप्तिमयिता, दुःखे महादुःखिता,
लब्धैः स्वीय सुखालि दुःखनिचयै र्नो हर्ष वाधोदयः।
स्वेष्टाराधन-तत्परा इह यथा श्रीवैष्णव श्रेणयः,
कास्ता ब्रूहि विचार्य्य चन्द्रवदने ता मद्वयस्या इमाः॥

(गो० ली० १३-११३)

जोसव जन अन्य जनकी तृप्ति से ही परितृप्त होते हैं, अपर व्यक्ति दुःखी होने पर जोसव व्यक्ति अत्यन्त दुःखित होते हैं, एवं अपना विविध सुख सौभाग्य उपस्थित होने परभी हर्षोदय नही होता है, एवं दुःख उपस्थित होने परभी मनोव्यथा नहीं होती हैं, तथा वृन्दावन में श्रीमद् वैष्णवजनों की भाँति स्वीय इष्ट देव की आराधना में तत्पर होते हैं, ऐसे व्यक्ति यहाँपर कौन है? श्रीकृष्णजी के प्रश्न के उत्तरमें श्रीभानुनन्दिनीनें कही—यहसव स्वभावविशिष्ट मेरी वयस्यागण ही हैं।

हरिदास शास्त्री

—: विषय सूची :—
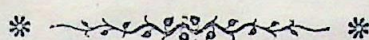
"श्लोक-संख्या"

१ ब्रह्मसूत्र प्रतिपाद्य तत्त्वकी वन्दना— १–२

२ वैष्णव वन्दना— ३

३ श्रीकृष्ण स्वरूप निरूपण— ४–५

४ ऐश्वर्य्य ज्ञान निरूपण— ६

५ माधुर्य्य ज्ञान निरूपण— ७–८

६ पुरवासियों में ऐश्वर्य्य ज्ञानमिश्र माधुर्य्य ज्ञान पूर्णता— ९–१०

७ श्रीकृष्ण स्वयं को मथुरामें ईश्वर रूपमें जानते थे— ११

८ व्रजमें महैश्वर्य्य रहने परभी उसका आवरक स्व-माधुर्य्य को ही श्रीकृष्ण सर्वथा प्रकट करते हैं, व्रजमें श्रीकृष्ण अपने को ईश्वर रूपमें नहीं जानते थे किन्तु व्रजेश के पुत्ररूपेण अपने को जानते थे— १२-१३-१४

९ प्रपञ्चागोचर लीलास्पद वृन्दावन प्रकाश का नित्यत्व में प्रमाण, प्रपञ्चाप्रपञ्च गोचर सविशेष लीलाद्वयकी नित्यता स्थापन— १५–२०

१० सर्बभक्ति रसाश्रय, धर्मी कैशोर उपास्य का वयस निरूपण— २१

११ सर्व सल्लक्षणान्वित— २२

१२ गुणोत्थ लक्षण— २३

१३ अङ्कोत्थ लक्षण— २४–३१

१४ धीर ललित लक्षण— ३२–३३

१५ शेष कैशोर— ३४–३५

१६ तन्माधुर्य्य— ३६–३८

१७ तन्मोहनता— ३९

"श्लोक-संख्या"

१८ वाल्यकालमें नवतारुण्य का प्रकटन-विरसता सम्पादक–४०–४१
१९ सौन्दर्य्य— ४२–४३
२० रूप— ४४–४५
२१ मृदुता— ४६–४८
२२ चेष्टा— ४९
२३ रास— ५०
२४ प्रसाधन— ५१
२५ वसन-युग, चतुष्क, भूयिष्ठ— ५२–५८
२६ आकल्प— ५९
२७ जुट— ६०
२८ माला-त्रिधा, वैजयन्ती, रत्नमाला, वनस्रज— ६३
२९ मण्डन— ६६
३० स्मित— ६७
३१ अङ्ग सौरभ— ६८
३२ वंश-वेणु, मुरली, वंशिका— ७७
३३ श्रृङ्ग— ७९
३४ नूपुर— ८०
३५ दासगण— ८२
३६ अनुगा, व्रजस्था— ८५
३७ रूप, सेवा, रूप, भक्ति— ८६–९१
३८ धूर्य्य, धीर, वीर,तद्वयस्यगण, व्रजसम्बन्धि वयस्यगण
रूप, सुहृद, सख्य— ९२–१०४
३९ मण्डली भद्रका रूप— १०६
४० श्रीबलदेव का रूप, सख्य— १०८
४१ सखागण, सख्य, रूप, सख्य— ११४
४२ प्रियसखावृन्द, सख्य, रूप, सख्य— १२४
४३ सुवल का रूप, सख्य— १२६

	"श्लोक-संख्या"
४४ उज्ज्वल का रूप, सख्य—	१३१
४५ गुरुगण—	१३२-१३५
४६ श्रीव्रजेश्वरी का रूप, वात्सल्य—	१४०
४७ श्रीव्रजाधीश का रूप, वात्सल्य—	१४१-१४४
४८ समस्त कान्ताओं में परममुख्य श्रीराधिका के स्वरूप, वयस, वेशादि का निरूपण—	१४५
४९ मधुरा—	१४६
५० चारु सौभाग्य रेखाढ्या—	१४८
५१ आत्यन्तिकाधिका—	१५०
५२ मध्या, व्यक्तयौवना—	१५३
५३ तन्माधुर्य्य, रूप—	१५५
५४ लावण्य—	१५८
५५ सौन्दर्य्य—	१६०
५६ अभिरूपता—	१६२
५७ माधुर्य्य—	१६५
५८ मार्दव, उत्तम—	१६९
५९ प्रौढ़ प्रेम—	१७०
६० मधुस्नेह—	१७२
६१ ललितमान—	१७३
६२ सख्य—	१७४
६३ माञ्जिष्ठ राग—	१७५
६४ अनुराग—	१७६
६५ भाव, अधिरूढ़, मोदन, ६६ दिव्योन्माद, मादन—	१७७-१८८
६७ श्रीकृष्ण प्राप्ति के लिए श्रीराधाजी की प्रसन्नता एकमात्र कारण है—	१८९-१९२
६८ श्रीराधिकाजी की सखी—	२००

"श्लोक-संख्या"

६९ सखी क्रिया— २०४
७० असमस्नेहा, स्नेहाधिका, प्रिय्रसखी में स्नेहाधिका-
समस्नेहा— २०५–२१२
७१ ललिता— २१३–२२७
७२ विशाखा— २२८–२३७
७३ चम्पकलता— २४४
७४ चित्रा— २५३
७५ तुङ्गविद्या— २५५–२६१
७६ इन्दुलेखा— २६२–२६९
७७ रङ्गदेवी— २७०–२७६
७८ सुदेवी— २७७–२८३
७९ वर— २८५
८० कलावती— २८७
८१ हिरण्याङ्गी— २९७
८२ रत्नरेखा— ३०१
८३ शिखावती— ३०३
८४ कन्दर्प मञ्जरी— ३०५
८५ फुल्ल कलिका— ३०७
८६ अनङ्ग मञ्जरी— ३०९
८७ परिचारिका— ३११
८८ श्रीरूप मञ्जरी—(ध्यानचन्द्र पद्धतिमें)
८९ श्रीमञ्जुलाली मञ्जरी— ३१२–३१५
९० श्रीविलास मञ्जरी— ३१६–३१९
९१ श्रीकस्तूरी मञ्जरी— ३२२

श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम्

भागवत-परमहंस-श्रीसिद्धकृष्णदास-तातपाद-कृता

श्रीश्रीगौर-गोविन्दार्च्चन-पद्धतिः

श्रीश्रीकृष्णचैतन्याय नमः

श्रीश्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः

नित्यानन्दाद्वैतचैतन्यमेकं,तत्त्वं नित्यालंकृत-ब्रह्मसूत्रम् ।
नित्यैर्भक्तैर्नित्यया भक्तिदेव्या, भातं नित्ये धाम्नि नित्यं भजामः ॥१।
नित्यैश्वर्य्यो नित्यनानाविशेषो, नित्यश्रीको नित्यभृत्यप्रसङ्गः ।
नित्योपास्तिर्नित्यलोकोऽवतु त्वां, नित्याद्वैतब्रह्मरूपोऽपि कृष्णः ॥२ ।
वाञ्छाकल्पतरुभ्यश्च कृपासिन्धुभ्य एव च ।
पतितानां पावनेभ्यो वैष्णवेभ्यो नमो नमः ॥ ३॥

आदौ श्रीकृष्णस्वरूपं निरूप्यते—

श्रीकृष्णस्तु स्वयंरूपो भेदाः सर्वे ततोऽखिलाः ।
प्रादुर्भूतास्ततः कृष्ण उपास्येषु वरः स्मृतः ॥ ४॥

श्रीनित्यानन्द- अद्वैत- चैतन्यदेव एक ही तत्त्व है, और यह ब्रह्मसूत्रको नित्यही अलंकृत किए है, नित्य भक्तगण नित्य भक्तिदेवीके द्वारा नित्य धाममें निरन्तर सेवा करते है, उन तत्व का भजन नित्य ही हम सब करें । १

जिनका ऐश्वर्य नित्य है, नित्य ही अनेक विशेषरूप भी होते है, शोभासम्पत्तिभी जिनकी नित्य है, भृत्यप्रसङ्गभी जिनका नित्यही है, जिनका धाम नित्य है, और उपासनाभी नित्य है, ऐसे नित्य-अद्वैत-ब्रह्मरूप कृष्ण तुम्हारी रक्षा करेगें । २॥

वाञ्छापूर्त्ति के लिए कल्प तरु के समान, कृपाका सागर पतितों को पावन करने बाले वैष्णवों को मैं वारंवार प्रणाम करता हूँ । ३॥

सर्व प्रथम श्रीकृष्णका स्वरूप निरूपण कर रहा हूँ ।

श्रीकृष्ण स्वयं रूप है, उनसे अखिल बिभिन्न स्वरूपों का प्रादुर्भाव हुआ है, अतएव समस्थ उपास्यों में श्रीकृष्ण ही श्रेष्ठ हैं । ४

यथा (पद्यावली ६)—

"अम्भोधिः स्थलतां स्थलं जलधितां धूलिलवः शैलतां ।
शैलो मृत्कणतां तृणंकुलिशतां वज्रं तृणक्षीणताम्" इत्यादि ॥ ५ ॥
देवक्या वसुदेवस्यैश्वर्य्यज्ञानमभूद्धरौ ।
यत्तस्य लक्षणं रागवर्त्मज्योत्स्ना-निरूपितम् ॥ ६ ॥

तद्‌यथा श्रीरागवर्त्मचन्द्रिकायाम् (२।५)—

,'ईश्वरोऽयमित्यनुसन्धाने सति हृत्कम्पजनक-संभ्रमेण स्वीय-भावस्यातिशैथिल्यं यत् प्रतिपादयति, तदैश्वर्य्यज्ञानम्। यत एव 'युवां न नः सुतौ साक्षात् प्रधानपुरुषेश्वरौ' (भा० १०।८५।१८) इत्यादि वसुदेवोक्तिः ।

कृष्णे शुद्धमभूत् प्रेम यत्तु नन्द-यशोदयोः ।
तत् प्रेमलक्षणं तत्र सम्यगेव निरूपितम् ॥ ७ ॥

ईश्वरोऽयमित्यनुसन्धानेऽपि हृत्कम्पजनक-सम्भ्रमगन्धस्यानुद्‌-गमात् स्वीयभावस्यातिस्थैर्य्यं यत् प्रतिपादयति, तन्माधुर्य्यज्ञानम् ।

पद्यावली (६ में)

समुद्र स्थलस्वरूप को, स्थल जलधि स्वरूप को, धूलिकण पर्वत स्वरूप को, पर्वत मृत्कणको, तृण वज्रस्वरूप को, वज्र तृण स्वरूप को जिनकी कृपा तथा अकृपा से प्राप्त होता है, ऐसे कृष्ण तत्त्व का मैं भजन करता हूँ । ५

श्रीहरि के प्रति देवकी वसुदेव का ऐश्वर्यज्ञान हुआ था । उसका लक्षण रागवर्त्म चन्द्रिकाकारने किया है । ६ ।

रागवर्त्म चन्द्रिका में (२।५)—

यह ईश्वर है, इस प्रकार अनुसन्धान होने पर हृत्कम्प जनक संभ्रमके द्वारा स्वीय भावका अतिशय शैथिल्य होना ही ऐश्वर्य ज्ञान है, इससे ही "पुत्र तुम दोनों साक्षात् प्रधान पुरुषेश्वर हो" इस प्रकार वसुदेव की उक्ति हुई ।

(भा० १०।८५।१८)—

नन्द यशोदा की शुद्ध प्रीति कृष्ण के प्रति हुई, इस शुद्ध प्रेम का लक्षण रागवर्त्म चन्द्रिका में सम्यक् रुपसे निरूपण हुआ है । ७ ।

यह ईश्वर है, इस प्रकार अनुसन्धान होनेपरभी हृत्कम्प जनक सम्भ्रम गन्ध का उदय न होने के कारण जो ज्ञान स्वीय भावकी अति-

पद्धतिः

यथा—'वन्दिनस्तमुपदेवगणा ये, गीतवाद्यवलिभिः परिवव्रुः' (भा०-१०।३४।२१) इति, वन्द्यमानचरणः पथि वृद्धैः, इति (२२) युगल-गीतोक्तिः गोष्ठं प्रति गवानयन-समये ब्रह्मेन्द्र-नारदादि-कृतस्य श्रीकृष्ण-स्तुतिगीतवाद्य-पूजोपहारप्रदानपूर्वक-चरणवन्दनस्य दृष्टत्वेऽपि श्रीदाम-सुवलादीनां सख्यभावस्याशैथिल्यं, तस्य तस्य श्रुतत्वेऽपि व्रजवालानां मधुरभावस्य न शैथिल्यम् । तथैव व्रजवालाकृत-तत्तदाश्वासनवाक्यै-र्व्रजेश्वर्या अपि नास्ति वात्सल्य-शैथिल्यगन्धोऽपि, प्रत्युत 'धन्यैवाहं यस्या मत्पुत्रः परमेश्वरः' इति मनस्याभिनन्दने पुत्रभावस्य दार्ढ्यमेव । यथा प्रकृत्याऽपि मातुः पुत्रस्यपृथ्वीश्वरत्वे सति तत्र पुत्रभावःस्फीततयैव भवति । एवं 'धन्या एव वयं येषां सखा च परमेश्वरः' इति, 'यासां प्रेयान् परमेश्वरः' इति सखीनां प्रेयसीनां च स्व-स्व-भावदार्ढ्यमेव ज्ञेयम् किञ्च, संयोगे सत्यैश्वर्य्यज्ञानं न सम्यगवभासते, संयोगस्य शैथिल्या-च्चन्द्रातप-तुल्यत्वात् । विरहे सत्यैश्वर्य्यज्ञानं सम्यगेवावभासते, विरह-

स्थिरता को प्रतिपादन करता है, वह ही माधुर्य ज्ञान है । जैसे (भा० १०।३५।२१ में) स्तुतिशील देवगण गीत वाक्यों के साथ तुह्मारी स्तुति करते है" । पथमें वृद्धगणभी चरण वन्दन करते है (२२) युगलगीत की इसप्रकार उक्ति, गोष्ठ के प्रति गवानयन समयमें ब्रह्मा-इन्द्र-नारदादि कृत श्रीकृष्ण स्तुति-गीत-वाद्य-पुजोपहार प्रदान पूर्वक चरण वन्दन को देखने परभी श्रीदाम सुवलादि का सख्यभाव का शैथिल्य नही हुआ उन उन विवरण सुनने परभी व्रजवालाओं का मधुर भाव का शैथिल्य नही हुआ ।

उसीप्रकार व्रजवाला कृत उन उन आश्वासन वाक्य से भी व्रजेश्वरी का भी वात्सल्य-शैथिल्य नही हुआ । प्रत्युत "मैं धन्य हूँ, मेरा पुत्र परमेश्वर है" इस प्रकार मनमें आनन्द व्याप्त होने के कारण पुत्रभाव की ही दृढ़ता हुई । जैसे पुत्र पृथ्वीश्वर होनेपर माता का पुत्रभाव स्फीतरूपसे होता है । एवं 'हम सव धन्य है' जिसके सखा परमेश्वर है, जिसका 'प्रिया परमेश्वर है' इसप्रकार सखाएवं प्रेयसीयोंकाभी निज निज भाव की दृढ़ता ही होती है । औरभी संयोगके समय ऐश्वर्य ज्ञान सम्यक् रूपसे प्रतिभात नही होता है । संयोग का शैथिल्य होने से वह चन्द्रातपके समान होता है । विरह होने पर ऐश्वर्य ज्ञान सम्यक् प्रति-भात होता है । उत्तम विरह सूर्यातप के समान होता है । इसमें भी

सौष्ठवात् सूर्य्यातपतुल्यत्वात् । तदपि हृत्कम्प-सम्भ्रमादराद्यभावा-न्नैश्वर्य्यज्ञानम् ।

यदुक्तं (भा० १०।४७।१७)—

मृगयुरिव कपीन्द्रं विव्यधे लुब्धधर्म्मा
स्त्रियमकृतविरूपां स्त्रीजितः कामयानाम् ।
बलिमपि बलिमत्त्वावेष्टयद्ध्वांक्षवद्य-
स्तदलमसितसख्यैर्दुस्त्यजस्तत्कथार्थः ।।' इति ।। ८ ।।

तत्र व्रजौकसां गोवर्द्धनधारणात् पूर्व्वं कृष्ण ईश्वर इति ज्ञानं नासीत् । गोवर्द्धनधारण-वरुणलोक-गमनानन्तरन्तु कृष्णोऽयमीश्वर एवेति ज्ञानेऽप्युक्तप्रकारेण शुद्धं माधुर्य्यज्ञानमेव पूर्णम् । वरुणवाक्येन उद्धववाक्येन च साक्षादीश्वरज्ञानत्वेऽपि 'युवां नन्दसुतौ' इति वसुदेव-वाक्यवद्व्रजेश्वरस्य 'न मे पुत्रः' इति मनस्यपि मनागपि नोक्तिः श्रूयत इति । तस्माद् व्रजस्थानां सर्व्वथैव शुद्धमेव माधुर्य्यज्ञानं पूर्णमिति ।

पुरस्थानान्तु ऐश्वर्य्यज्ञानमिश्रं माधुर्य्यज्ञानपूर्णम्,—

ऐश्वर्य्यं मथुरायान्तु कृष्णप्रकटयत्यलम् ।
न माधुर्य्यन्तु तत्रास्य पुराणेष्वेव निश्चयः ।। ९ ।।

हृत्कम्प-संभ्रम-आदरादि का अभाव होने के कारण ऐश्वर्य ज्ञान नही है।

कहा जाता है—(१०।४७।१७)—

लुब्ध व्याध के समान तुमने कपीन्द्र को मारा । स्त्रीको भी नाक काट कर विरूप बनाया, स्त्रैण भी बना । बलि को भी कौआ के तरह घेर लिया था, इसलिए काले के साथ सख्य करना ठीक नही है, तथापि उसकी बात छोड़ी नही जाती । ८ ।

इस वाक्य में ईश्वर ज्ञान सुस्पष्ट हैं, उत्तर में कहते हैं, वहाँपर गोवर्द्धन धारण के पहले कृष्ण ईश्वर है, यह ज्ञान व्रजवासियों का नही था । गोवर्द्धन धारण-वरुणलोकगमन के अनन्तर कृष्ण ईश्वरही हैं इस प्रकार ज्ञानोदय होने से पूर्वोक्त रीति से परिपूर्ण माधुर्यज्ञान की ही सिद्धि होती है । वरुण के वाक्य से एवं उद्धव के वाक्य से साक्षात् ईश्वर ज्ञान होने परभी "तुम दोनो" "नन्द के पुत्र हो" वसुदेव के वाक्य की भाँति व्रजश्वर की 'मेरा पुत्र नही हैं' इसप्रकार मनमेंभी स्वल्पभी उक्ति सुनी नही गयी, अतएवव्रजवासियों का सर्वथा ही शुद्धही माधुर्य ज्ञान पूर्ण है

पुरवासियों का ऐश्वर्य ज्ञान मिश्र माधुर्य ज्ञानपूर्ण है। कृष्ण

पद्धति।

ऐश्वर्य्यन्तु नरलीलत्वानपेक्षितत्वे सतीश्वरत्वाविष्कार एव । यथा मातापितरौ प्रत्यैश्वर्य्यं दर्शयित्वा (भा० १०।३।४४)—

'एतद्वां दर्शितं रूपं प्राग्जन्म-स्मरणाय मे ।
नान्यथा मद्भवं ज्ञानं मर्त्त्यलिङ्गेन जायते ।।'इत्युक्तमिति ।।१०

श्रीकृष्णो मथुरायां वै जानात्यात्मानमीश्वरम् ;

यथा तत्रैव (२।६)—पुरे वसुदेवनन्दनः कृष्णोऽयमीश्वर एवेति नरलीलत्वेऽपि स्वमीश्वरत्वेन जानात्येवेति ।

महेश्वर्य्यस्य सत्त्वेऽपि तस्याप्याच्छादकं भृशम् ।
स्वमाधुर्य्यं व्रजे कृष्णः सदा प्रकटयत्यलम् ।। ११ ।।

माधुर्य्यलक्षणं व्रजे सदा माधुर्य्य-प्रकटनञ्च; यथा तत्रैव (२।३)—

महैश्वर्य्यस्य द्योतने चाद्योतने च नरलीलत्वानतिक्रमो माधुर्य्यम् यथा पूतना-प्राणहारित्वेऽपि स्तनचूषणलक्षण-नरवाललीलत्वमेव । महाकठोरशकटस्फोटनेऽपि अतिसुकुमारचरण-त्रैमासिकोत्तानशायि-

मथुरा में यथेष्ट ऐश्वर्य प्रकट करते हैं। माधुर्य का प्रकट नही करते हैं, समस्त पुराणों में यह निर्णयहुआ है ।। ६ ।।

ऐश्वर्य उसको कहा जाता है, जिसमें नरलीला को अपेक्षा न करके ही ईश्वरत्व का आविष्कार होता है। जैसे (भा० १०।३।४४) माता पिताके प्रति ऐश्वर्य को दिखाकर कहा– यह रूप मैंने तुम्हें दिखाया, इससे मेरा पूर्वजन्मका भी ज्ञान तुम्हें हो जावेगा, नहीं तो मेरे जन्म को भी तुम साधारण मनुष्य जन्म के समानही मानोगे ।।१०

(रागवर्त्मचन्द्रिका २।३)— श्रीकृष्णतो मथुरामें अपने को ईश्वरही जानते थे। पुरमें वसुदेव नन्दन कृष्ण ईश्वरही है। नरलीला होनेपरभी अपने को ईश्वर रूपसे ही जानते थे।

महैश्वर्य रहने परभी उसका परिपूर्ण रूपसे आस्वादक स्व माधुर्य है, जिसको कृष्णने व्रजमें ही सदा प्रकट किया है। ११।

माधुर्य का लक्षण और सदा माधुर्य का प्रकटनभी व्रजमें है।

(रागवर्त्मचन्द्रिका २।३)— माधुर्य उसको कहा जाता है। जिसमें महैश्वर्यका प्रकाशमें और अप्रकाश में भी नरलीलत्व का अतिक्रम नही होता है। जैसे पूतना का प्राण हरण कारी होकरभी स्तन चूषण-रूप नरवाललीलत्व ही रहा है। महा कठोर शकट भञ्जन में भी अति सुकुमार चरण-त्रैमासिक-उत्तानशायि वाल लीलत्व ही

वाललीलत्वमेव । महादीर्घदामाशक्यवन्धत्वेऽपि मातृभीतिवैक्लव्यम् । ब्रह्म-बलदेवादिमोहनेऽपि सार्वज्ञत्वेऽपि वत्सचारणलीलत्वम् । तथै-श्वर्य्यसत्त्व एव तस्याद्योतने दधिपयश्चौर्य्यं गोपस्त्रीलाम्पट्यादिकम् । ऐश्वर्य्यरहित-केवल-नरलीलत्वेन मौग्ध्यमेव माधुर्य्यमित्युक्ते : क्रीड़ा-चपलप्राकृत-नरवालकेष्वपि मौग्ध्यं माधुर्य्यमिति प्रसज्जेदिति तथा न निर्वाच्यमिति ।

ईश्वरत्वेन जानाति नैव कृष्णो व्रजे स्वकम् ।
जानाति स्वं स तत्रैव सुतत्वेन व्रजेशयोः ॥ १२ ॥

यथा तत्रैव (२।६)— ननु नन्दनन्दनः श्रीकृष्णः स्वमीश्वरत्वेन व्रजे जानाति, न वा, यदि तत् जानाति, तदा दामवन्धनलीलायां मातृभीतिहेतुकाश्रुपातादिकं न घटते । तदादिकमनुकरणमेवेति व्याख्या तु मन्दमतीनामेव, न त्वभिज्ञभक्तानाम् । तथा व्याख्यानस्याभिज्ञ-सम्मतत्वे—

रहा । महादीर्घदाम के द्वारा बन्धा न जाने परभी मातृभीति विह्वलता ।

ब्रह्मा और बलदेवादि का मोहन होकरभी, सर्वज्ञ होकरभी वत्सचारण लीलत्व । इस प्रकार ऐश्वर्य रहने परभी उसका अप्रकाश में ही दधि दुग्ध के चोरी, एवं गोपस्त्री लाम्पट्यादि । ऐश्वर्य रहित-केवल नरलीलता के कारण मौग्ध्य को ही यदि माधुर्य कहने पर माधुर्य का लक्षण प्राकृत नरवालक में प्रसक्त होगा, क्योंकि प्राकृत नरवालक में भी क्रीड़ा चपलता समधिक दृष्ट होता है, इसलिए ऐसा लक्षण करना उचित नहीं है ।

व्रज में कृष्ण अपने को ईश्वर रूप से नही जानते है, व्रज में तो कृष्ण अपनेको श्रीनन्द यशोदा के पुत्र रूप से ही जानते हैं । १२ ।

उदाहरण के लिए रागवर्त्मचन्द्रिका (२।६—)में "नन्दनन्दन श्रीकृष्ण व्रजमें अपने को ईश्वरत्वेन जानते है, अथवा नही ? यदि अपने को ईश्वरत्वेन जानते, ऐसा कहने पर-दाम-वन्धन लीला में मातृ भीति हेतु अश्रु पातादि की सम्भावना ही नही होगी, यदि कहो कि वह सव अनुकरण मात्र ही है, तो कहना होगाकि-यह सव व्याख्या मन्द-मतीयों की ही है । अभिज्ञ भक्त की व्याख्या नही है ।

उदाहरण के लिए एक भक्ति-अभिज्ञ की व्याख्या प्रस्तुत करते हैं । कुन्ती देवी कहती है- अपराध करने पर तुम्हे बंधने के लिए

पद्धतिः

'गोप्यादते त्वयि कृतागसि दाम तावद्-
या ते दशाश्रु कलिलाञ्जनसम्भ्रमाक्षम् ।
वक्त्रं निनीय भय-भावनया स्थितस्य
सा मां विमोहयति भीरपि यद्बिभेति ॥'(भा० १।८।३१)॥१३।

इत्युक्त्यैव कुन्त्या ऐश्वर्य्यज्ञानं व्यक्तीभूतम् । 'भय-भावनया स्थितस्य' इत्यन्तर्भयस्य च तया सत्यत्वमेवाभिमतम् । अनुकरण-मात्रत्वे ज्ञाते तस्यामोहो न सम्भवेदिति ज्ञेयम् । यदि च स स्वमीश्वरत्वेन न जानाति, तदा तस्य नित्यज्ञानानन्दघनस्य ज्ञानावरणं केन कृतमिति ?

तत्रोच्यते— यथा संसारबन्धे निपात्य दुःखमेवानुभावयितुं मायावृत्तिरविद्या जीवानां ज्ञानमावृणोति, यथा च महामधुर-श्रीकृष्ण-लीलारससुखमनुभावयितुं गुणातीतानां श्रीकृष्णपरिवाराणां व्रजेश्वर्य्यादीनां ज्ञानं चिच्छक्तिवृत्तिर्योगमायैवावृणोति, मथैव श्रीकृष्णमानन्द-स्वरूपमप्यानन्दातिशयमनुभावयितुं चिच्छक्तिसारवृत्तिः प्रेमैव तस्य ज्ञानमावृणोति । प्रेमणस्तु तत्स्वरूपशक्तित्वात् तेनैव तस्य व्याप्तेर्न दोषः । यथा ह्यविद्या स्ववृत्त्या ममतया जीवं दुःखयितुमेव बध्नाति, तथैव प्रेम स्ववृत्त्या ममतया श्रीव्रजेश्वर्य्याद्यन्तर्नित्यस्थितया परमेश्वरं

गोपीने जब रज्जु का ग्रहण किया तो उस समय तुह्मारी विलक्षण अवस्था हो गयी थी, नेत्र जलसे काजल पिघल कर कपोल पर छा गया था, और नेत्र भी सम्भ्रम में भर गया था, तुम भीत होकर अपने मुंहको नीचे लटका कर खड़े थे । यह दृश्य मुझे मुग्ध कर रहा है, कयोंकि जिसके भय से मृत्यु भी डरजाती है, उसका भी भय ?

कुन्ती की यह उक्ति ही कुन्ती के ऐश्वर्य ज्ञान को कह देती है, 'भय भावनया स्थितस्य, भयभीत होकर थे- इससे सत्यही अन्तर्भय रहा एवं वह भय भी सत्य ही रहा । अनुकरण मात्र होनेपर कुन्ती का मोह होना असम्भव होता, यदि कृष्ण अपने को ईश्वरत्वेन नही जानते तो उस समय ज्ञानानन्दघन का ज्ञानावरण किससे हुआ ?

इस विषयमें कहते हैं— जैसे संसार बन्धमें डालकर मायावृत्ति अविद्या जीवों का ज्ञान को ढाक देती है, जैसे ही महा-मधुर लीलारस सुख अनुभव कराने के लिए गुणातीत श्रीकृष्ण परिवार व्रजेश्वरी प्रभृति का ज्ञान को चिच्छक्ति वृत्ति योगमाया आवृत करती है, वैसे ही श्रीकृष्ण को आनन्द स्वरूप होने परभी आनन्दातिशय का अनुभव

सुखस्वरूपमप्यतिसुखयितुमेव बध्नाति। यथा दण्डनीयस्य जनस्य गात्र-बन्धनं रज्जुनिगड़ादिना, माननीयजनस्यापि गात्रबन्धनमनर्घ्यस्रग्गन्ध-श्लक्ष्नकञ्चुकोष्णीषादिना, इत्यविद्याधीनो जीवो दुःखी, प्रेमाधीनः कृष्णोऽतिसुखी। कृष्णस्य प्रेमावरणरूपः सुखविशेषभोग एव मन्तव्यः। यथा भृङ्गस्य कमलकोषावरणरूपः। अतएवोक्तम् (भा० ३।६।५)— 'नापैषि नाथ हृदयाम्बुरुहात् स्वपुंसाम्' इति; 'प्रणयरसनयाधृतांघ्रि-पद्मः' (भा० ११।२।५५) इति च। किञ्च– यथैवाविद्यया स्वतारतम्येन ज्ञानावरण-तारतम्याज्जीवस्य पञ्चविध-क्लेशतारतम्यं विधीयते, तथैव प्रेम्णापि स्वतारतम्येन ज्ञानैश्वर्याद्यावरण-तारतम्येन स्वविषयाश्रययो-रनन्तप्रकारं सुखतारतम्यं विधीयते इति। तत्र केवलं प्रेमा श्रीयशोदा-दिनिष्ठः स्वविषयाश्रयौ ममता-रसनया निबध्य परस्परवशीभूतौ

कराने के लिए चिच्छक्ति सार वृत्ति प्रेमही श्रीकृष्ण का ज्ञान को आवृत करती है, प्रेम श्रीकृष्ण की स्वरूपशक्ति रूप होने से उससे उनकी व्याप्ति दोषावह नहीं है।

जैसे अविद्या स्ववृत्ति ममता के द्वारा जीव को दुःख देने के लिए बाँधती है, उसी प्रकार श्रीव्रजेश्वरी आदि के अन्तःस्थल में नित्य स्थित प्रेम स्ववृत्ति ममता के द्वारा सुखस्वरूप होने परभी परमेश्वर को अतिशय सुखी करने के लिऐ वन्ध करता है।

जैसे दण्डनीय व्यक्ति का गात्र बन्धन रज्जु-निगड़ आदि से होता है, माननीय जनका गात्र बन्धन अनर्घ्य-स्रग्-गन्ध-श्लक्ष्न कञ्चुक उष्णीष आदि के द्वारा होता है, इस प्रकार अविद्याधीन जीव दुःखी, और प्रेमाधीन कृष्ण अतिसुखी है; कृष्ण का प्रेमावरणरूप सुखविशेष भोग ही मानना होगा, जैसे भृङ्गका कमल कोष का आवरण। इसलिए कहा गया है-(भा० ३।६।५) हे नाथ! आप निज जनके हृदयकमल को कभी भी नही छोड़ते हैं, आपका चरण कमल प्रणयरसनासे बद्ध है, (भा० ११।२।५५) औरभी – जैसे अविद्या तारतम्य से ज्ञानावरण तारतम्य के कारण जीवका पञ्चविध क्लेश का तारतम्य होता है, वैसे ही प्रेम तारतम्य से ज्ञानैश्वर्यादि आवरण तारतम्य से प्रेम के आश्रय एवं विषय का अनन्त प्रकार सुख तारतम्य का विधान होता है, वहाँपर केवल ही श्रीयशोदादि निष्ठ प्रेमहि प्रेमके विषयाश्रय को ममता- रसना से बंधकर परस्पर वशीभूत कर ज्ञानैश्वर्यादि को आवृत

विधाय ज्ञानैश्वर्य्यादिकमावृत्य यथाधिकं सुखयति, न तथा देवक्यादि-निष्ठो ज्ञानैश्वर्य्यमिश्र इति। तस्माद् व्रजेश्वर्य्यादीनां सन्निधौ तद्-वात्सल्यादिप्रेममुग्धः श्रीकृष्णः स्वयमीश्वरत्वेन नैव जानाति। यत्तु नानादानवदावानलाद्युत्पातागमनकाले तस्य सार्वज्ञ्यं दृष्टं, तत् खलु प्रेमिपरिजन-परिपालन-प्रयोजनिकया लीलाशक्त्यैव स्फुरितं ज्ञेयम्। किञ्च—मौग्ध्यसमयेऽपि तस्य साधकभक्त-परिचर्य्यादिग्रहणे सार्वज्ञ्य-मचिन्त्यशक्तिसिद्धमिति प्रागुदितम्" इति।

यथा ब्रह्मसंहितायाम् (५।४८)—

'आनन्दचिन्मयरसप्रतिभाविताभि-
स्ताभिर्य य एव निजरूपतया कलाभिः।
गोलोक एव निवसत्यखिलात्मभूतो
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥' १४॥

टीकायाम्— आनन्देति ब्रह्मणः स्तुतिः। श्रीकृष्णस्य यत् सच्चिदानन्दस्वरूपत्वं तत्र ये आनन्दचिन्मया आनन्दानुभवमया रसा-स्तैः प्रतिभाविताभिस्ततः पृथक्त्वेनाविर्भाविताभिः 'ह्लादिनी सन्धिनी

करके जैसे अधिक सुख प्रदान करता है, वैसे देवक्यादि निष्ठ ज्ञानैश्वर्य मिश्र प्रीति की सामर्थ्य नही हैं। इसलिए व्रजेश्वरी आदि के सान्निध्य में उनसव के वात्सल्यादि प्रेममुग्ध श्रीकृष्ण अपने को स्वयं ईश्वर रूपमें नही जानते हैं।

अनेक विध दानव-दावानलादि उत्पात आने पर कृष्ण का सार्वज्ञ्य दृष्ट होता है, वह केवल प्रेमि परिजन-परिपालन-प्रयोजन के लिए लीला शक्ति से ही स्फुरित हुआ है. मुग्ध अवस्था में भी श्रीकृष्ण साधक भक्त की परिचर्यादि ग्रहण करते हैं, इसमें जो सार्वज्ञ्य का उदय होता हैं, वह अचिन्त्यशक्ति सिद्ध है।

ब्रह्म संहिता (५।४८)—

आनन्द चिन्मय रस प्रतिभावितान्तः करण स्वरूप शक्ति भूत गोपियों के साथ अखिलात्मभूत श्रीगोविन्द गोलोक में ही निवास करते है, उनका में भजन करता हूँ। टीका में— आनन्द यह पद्य ब्रह्मस्तुति का है। श्रीकृष्ण का जो सच्चिदानन्द स्वरूप है, उसमें आनन्द चिन्मय- आनन्दानुभवमय रससमूह है, उससे प्रतिभावित अर्थात् पृथक् रूपसे आविर्भावित व्यक्तियों के साथ रहते है, विष्णु

सम्वित्त्वय्येकासर्वसंश्रये' इति वैष्णवात् ; यद्वा, आनन्दचिन्मयैरप्राकृतैः प्रेमरूपैरित्यर्थः। रसैः शृङ्गारैः प्रतिभाविताभिः, आदौ ताभिर्भावितः पश्चात्ता अपि स्वेन भाविता भावयुक्तीकृता इति परम्परभावनिष्ठत्वं 'प्रति'-शब्दवलात् व्याख्यातम्। निजस्वरूपतयाभिः स्वरूपभूताभिः शक्तिभिरित्यर्थः। 'परास्य शक्तिर्वहुधैव श्रूयतेः स्वाभाविकी ज्ञानबल-क्रिया च' इति श्रुतेः (श्वे० ६।८); 'विष्णुशक्तिः परा प्रोक्ता' इति, 'ह्लादिनी सन्धिनी' इत्यादि विष्णुपुराणाच्च। 'कलाभिः' इति करण-पदं शृङ्गारोपयोगिनीभिश्चतुषष्टिकलाभिर्निवसति निरन्तरं विहर्त्तुमि-त्यर्थः। अखिलात्मभूतोऽखण्डपरमात्माकारः सन् गोलोके महावैकुण्ठो-परितने कृष्णलोके तथा प्रपञ्चान्तर्वर्ति-भूलोकस्थे गोकुलेऽखिलानां सर्वेषामात्मभूतो जीवनीभूतो मानुषाकार इत्यर्थः। गोलोक-शब्दस्य उभयत्रैव प्रवृत्तिदर्शनात्। यदुक्तं ब्रह्मसंहितायाम् (५।५४) गोलोक-नाम्नि निजधाम्नि तले च तस्य, देवीमहेश-हरिधामसु' इत्यादि।

पुराण की उक्ति है, ह्लादिनी-सन्धिनी-सम्वित् निखिलाश्रय आपमें ही यह शक्ति है। अथवा आनन्द चिन्मय अप्राकृत प्रेमरूपसे इस शृङ्गार के द्वारा प्रतिभावित, प्रथम उन सवनें भावनासे कृष्ण को संयुक्त किया, पश्चात् कृष्णने भी उन सवको भावयुक्त किया है। इसलिए 'प्रति' शब्द के योग से परस्पर भावनिष्ठत्व अर्थ प्रकाश होता हैं। निज स्वरूपभूत शक्ति के साथ ही। श्रीकृष्ण की पराशक्ति बहुविध है। स्वाभाविकी ज्ञान-वल-क्रिया रूपा। (श्वे० श्रुति-६।८) विष्णुपुराण में-विष्णु की परा शक्ति कही गया है। ह्लादिनी सन्धिनी। कलाभिः यह करण पद है, शृङ्गारोपयोगि-चतुःषष्टि कलाओं के साथ ही निवास करते है। निरन्तर विहार करने के लिए उनसब को ग्रहण करते हैं।

अखिलात्मभूत- अखण्ड परमात्माकार होकर-गोलकमें-महा वैकुण्ठ के उपरिभाग में श्रीकृष्ण लोक में, एवं प्रपञ्चके अन्तर्वर्त्ती भूलोकस्थ गोकुल में अखिलात्मा सव के आत्मभूत जीवनस्वरूप मनुष्याकार। गालोक शब्द दोनों अर्थ का प्रकाशक है। ब्रह्म संहिता में (५।५४) में गोलोक नामक निज धाम में, जिसके नीचे हरि-महेश-देवी का धाम है। हरि वंश का गोलोक शब्द भी इस क्रमसे जानना होगा। गोप्रधान स्थान ही गोलोक है, उसको प्राप्त करना कठिन है,

पद्धतिः

तथा हरिवंशे—गोलोकशब्द इति क्रमेण ज्ञेयम्—'गवामेव तु गोलोको दुरारोहा हि सा गतिः। स तु लोकस्त्वया कृष्ण सीदमानः कृतात्मना। धृतो धृतिमता वीर निघ्नतोपद्रवान् गवाम्।' इति। रक्षित इति शेषः। गोलोकशब्दस्योभयवाचित्वेऽपि 'दुरारोहा हि सा गतिः इत्यनेन गोलोकस्योत्कर्षः सूचितः। गोलोक एव' इति एवकारो वैकुण्ठान्तर-व्यावर्तकः।

अथ प्रपञ्चागोचरलीलास्पदस्य वृन्दावनप्रकाशस्य नित्यत्वे प्रमाणानि दर्श्यन्ते ; यथा रुद्रयामले—

'वीथ्यां वीथ्यां निवासोऽधरमधुसुवचस्तत्र सन्तानकाना-
मेके राकेन्दुकोट्या उपविशदकरास्तेषु चैके कमन्ते।
रामे रात्रेर्विरामे समुदित-तपनद्योतिसिन्धूपमेया
रत्नाङ्गानां सुवर्णाचितमुकुररुचस्तेभ्य एके द्रुमेन्द्राः॥ १५॥
यत् कुसुमं यदा मृग्यं यत् फलञ्च वरानने।
तत्तदेव प्रसूयन्ते वृन्दावनसुरद्रुमाः॥' १६॥

अर्थश्च—हे अधरमधुसुवचः! अधर मधुतुल्यानि सुवचांसि यस्यास्तथाभूते गौरि! तत्र श्रीवृन्दावने रत्नाङ्गानां सन्तानकानां मध्ये एके द्रुमेन्द्रा राकेन्दुकोट्या उपविशदकराः। हे रामे! तेषु च सन्तानकेषु एके रात्रेर्विरामे समुदित-तपनद्योति-सिन्धूपमेया कमन्ते विराजन्ते। तेभ्यस्तानप्यतिक्रम्य एके कमन्ते। कथम्भूताः? सुवर्णाचित-मुकुररुच

हे कृष्ण वह लोक विपन्न होने पर धृतिमान कृतात्मा हे वीर! तुमने ही उसकी रक्षा की, गोलोक शब्द उभयार्थक होनेपर भी दुरारोहा गति शब्दसे गोलोक का उत्कर्ष सूचित हुआ है। गोलोक एव यहाँपर एवकार के द्वारा वैकुण्ठान्तर का निरास किया गया है।

अनन्तर प्रपञ्चागोचर लीलास्पद वृन्दावन की नित्यता के विषय में प्रमाण समूह दिखाते हैं। रुद्रयामल में—

हे अधर मधुसुवच! गौरि! उन वृन्दावनमें सन्तानक प्रभृति कल्प तरु समूह सर्वत्र पर्याप्त रुपेण वर्त्तमान है, वे एकही कोटि कोटि चन्द्रके समान कान्ति युक्त है। हे रामे! उन सन्तानक आदि कल्प वृक्षों में रात वीत जाने पर सन्तापित सूर्य के समान कान्ति युक्त होते है। इस सव को अतिक्रम करके भी कुछ वृक्ष सुवर्ण दर्पण की भाँति शोभित होते हैं। वहाँपर जव जैसे कुसुम ओर फलकी आवश्यकता

इति। तत्र च यदा यत् कुसुमं मृग्यं भवति, फलं वा तदेव वृन्दावन-सुरद्रुमा एव प्रसूयन्ते। एवं नारदपञ्चरात्रे च श्रुतिविद्यासंवादे—

'अहो वृन्दावनं तत्र केलिवृन्दावनानि च।
वृक्षाः कल्पद्रुमाश्चैव चिन्तामणिमयी स्थली ॥ १७॥
क्रीड़ाविहङ्गलक्षञ्च सुरभीनामनेकशः।
नानाचित्रविचित्र-श्रीरासमण्डलभूमयः ॥ १८॥
केलिकुञ्जनिकुञ्जानि नानासौख्यस्थलानि च।
प्राचीरच्छत्ररत्नानि कलाः शेषस्य भान्त्यहो ॥ १९॥
यच्छिरोरत्नवृन्दानामतुल्यद्युतिवैभवम्।
ब्रह्मैव राजते तत्र रूपं को वक्तुमर्हति ॥' इति ॥ २०॥

एवञ्च प्रपञ्चाप्रपञ्चगोचरयोरपि लीलयोः सविशेषयोरेव नित्यत्वं व्यवस्थापितमिति।

(भ० र० सि० २।१।६३)—

'वयसो द्विविधत्वेऽपि सर्वभक्तिरसाश्रयः।
धर्मी कैशोर एवात्र नित्यनानाविलासवान् ॥' २१॥

सर्वसल्लक्षणान्वितो यथा श्रीहरिभक्तिरसामृतसिन्धौ (२।१।४७-४९)—

होती है, कल्पद्रुमगण सवही तत्काल प्रकाश करते हैं।

इस प्रकार नारद पञ्चरात्र के श्रुति विद्या संवाद में भी वर्णित है—

आश्चर्य जनक श्रीवृन्दावन हैं, वहाँपर केलि वृन्दावन समूह सुशोभित है, वृक्षगण कल्पद्रुम है, भूमि भी चिन्तामणि मयी है। लक्ष लक्ष क्रीड़ा विहङ्ग एवं सुरभी भी है। नाना चित्र विचित्र श्रीरासमण्डल भूमिभी है, प्राचीर रत्न समूह अतिशय शोभित है, वहाँ के निवासियों के शिरोरत्न अतुल्य द्युति वैभव युक्त है, वे सब ब्रह्म के समान प्रकाशित है, अतएव वहाँ का रूप को कहने में कोन समर्थ हैं।

उक्त प्रमाणों से प्रपञ्च अप्रपञ्च अनुष्ठित सविशेष लीलाओं का नित्यत्व स्थापित हुआहै।

(भक्तिरसामृतसिन्धु २।१।६३) में—

श्रीकृष्ण के वयस द्विविध होने परभी नित्य नाना विलासवान् सर्वभक्ति रसाश्रय कैशोर वयस ही धर्मी है। २१।

सर्व सल्लक्षणान्वित श्रीहरिभक्तिरसामृत सिन्धु (२।१।४७-४९)

पद्धतिः
तनौ गुणोत्थमङ्कोत्थमिति सल्लक्षणं द्विधा ।
तत्र गुणोत्थम्—गुणोत्थं स्याद्गुणैर्योगो रक्तता-तुङ्गतादिभिः ॥ २२ ॥
यथा— राग सप्तसु हन्त षट्स्वपि शिशोरङ्गेष्वलं तुङ्गता
विस्तारस्त्रिपु खर्वता त्रिषु तथा गम्भीरता च त्रिपु ।
दैर्घ्यं पञ्चसु किञ्च पञ्चसु सखे संप्रेक्षचते सूक्ष्मता
द्वात्रिंशद्वरलक्षणः कथमसौ गोपेषु सम्भाव्यते ॥'२३ ॥

अस्यार्थः— "राग इति श्रीमद्व्रजेश्वरं प्रति कस्यचित् सवयसो गोपस्य वाक्यमिदम् । सप्तसु—नेत्रान्तपादकरतल-तात्वधरौष्ठ-जिह्वा-नखेषु ; षट्सु—वक्षः-स्कन्ध-नख-नासा-कटि-मुखेषु ; त्रिपु—कटि-ललाट-वक्षःसु ; केचित् कटिस्थाने शिरः पठन्ति । पुनस्त्रिपु—ग्रीवा-जङ्घा-मेहनेषु ; पुनश्च त्रिपु—नाभि-स्वर-सत्त्वेषु ; पञ्चसु—नासा-भुज-नेत्र-हनू-जानुषु ; पुनः पञ्चसु—त्वक्केशांगुलिपर्व-दन्त-रोमसु ; तथा तथैव महापुरुषलक्षणे सामुद्रिक-प्रसिद्धैः । द्वात्रिंशद्वराणि तत्तल्लक्षणेभ्यो गोपेभ्योऽन्येभ्योऽपि श्रेष्ठानि लक्षणानि यस्य स गोपेषु कथमिति भगवदवतारादिष्वप्येतादृशत्वाश्रवणादिति भावः ।" इति ।
(भ० र० सि० २।१ ५०)—

में वर्णित है। गुणोत्थ— गुणों से युक्त को गुणोत्थ कहा जाता है रक्तता और तुङ्गता आदि द्वारा होता है ।२२।

जैसे 'राग सप्तसु' इसका अर्थ इस प्रकार है— श्रीव्रजेश्वर के प्रति सवयस्य किसी गोप का वचन है, सप्तस्थल पर- नेत्रान्त-पाद-करतल-तालु-अधर-और-जिह्वा-नखमें रक्तता है, षट्-स्थानपर वक्षः-स्कन्ध-नख-नासा-कटि-मुखमें तुङ्गता है, त्रिपु-तिनस्थलमें कटि-ललाट-वक्षःस्थलमें विस्तार है, कोई कोई कटिस्थान पर शिरः शब्दका पाठ करते हैं । पुनर्बार तिनस्थल में-ग्रीवा-जङ्घा-मेहन स्थलपर स्थुलता नाभि-स्वर-सत्त्वमें गभीरता, नासा-भुज-नेत्र-हनु-जानुमें दीर्घता है, त्वक्-केश-अंगुलि पर्व-दन्त-रोममें सूक्ष्मता है, महापुरुष का लक्षण सामुद्रिक शास्त्रमें प्रसिद्ध है । द्वात्रिंशद् वत्तीस उत्तम लक्षण युक्त गोपों से और अपरों से भी श्रेष्ठ लक्षण समूह कृष्ण में दृष्ट होता है। भगवत अवतारादि में इस प्रकार लक्षण दिखा नही जाता है, गोप में इस प्रकार लक्षण कैसे हुआ हैं ? प्रश्नका सारार्थ इस प्रकार हैं ।

अङ्कोत्थ-(भ० र० सि० २।१।५०)—

अङ्कोत्थम्—रेखामयं रथाङ्गादि स्यादङ्कोत्थं करादिषु ॥२४॥

यथा श्रीगोविन्दलीलामृते—

'शङ्खार्द्धेन्दु-यवांकुशैररि-गदाच्छत्र-ध्वज-स्वस्तिकै-
यूपाब्जासिहलैर्धनुःपवि-घटैः श्रीवृक्ष-मीनेषुभिः ।
नन्द्यावर्त्तचयैस्तथांगुलिगतै रेखामयैर्लक्षणै-
र्भातः श्रीपुरुषोत्तमत्व-गमकैर्जानीहि रेखाङ्कितैः ॥ २५ ॥
चक्रार्द्धेन्दुयवाष्टकोणकलसैश्छत्र-त्रिकोणाम्बरै-
श्चाप-स्वस्तिक-वज्र-गोष्पद-दरैर्मीनोर्द्धवरेखांकुशैः ।
अम्भोजध्वजपक्वजाम्बफलैः सल्लक्षणैरङ्कितं
जीयाच्छ्रीपुरुषोत्तमत्वगमकैः श्रीकृष्णपादद्वयम् ॥' इति ॥२६॥

यथा श्रीरूपचिन्तामणौ—

'चन्द्रार्द्धं कलसं त्रिकोणधनुषि खं गोष्पदं प्रोष्ठिकां
शङ्खं सव्यपदेऽथ दक्षिणपदे कोणाष्टकं स्वस्तिकम् ।

हस्थ आदि में रथाङ्गादि रेखामय को अङ्कोत्थ कहा जाता है।

श्रीगोविन्दलीलामृत में १६।६७–६

पुरुषोत्तमत्व ज्ञापक निज यह विंशति चिह्न द्वारा अङ्कित श्रीकृष्ण करतलद्वय शोभित है,

चिह्न समूह इस प्रकार है–१ शङ्ख, २ अर्द्ध चन्द्र, ३ यव, ४–अंकुश, ५ अरि चक्र, ६ गदा छत्र ७, ध्वज ८, स्वस्तिक ९, यूप १०, अब्ज ११, असि १२, हल १३, धनु १४, परिघ अर्गल १५, श्रीबृक्ष (विल्वबृक्ष) अथवा शोभित बृक्ष १६, मीन (मछली) १७, इषु (वाण) १८ ये आठारह चिह्न एवं अंगुली के अग्रस्थित नन्दावर्त्त अर्थात् चक्र-समूह, १६।६०।

चन्द्र, अर्द्ध चन्द्र, यव, अष्टकोण कलस, छत्र, त्रिकोण, अम्बर, आकाश। अर्थात् शून्य चिह्न, धनु, स्वस्तिक, बज्र, गोष्पद, शङ्क, मीन, ऊर्द्ध रेखा, अंकुश, अम्भोज, ध्वज, एवं पक्वजम्वुफल भगवत्ता का परिचायक वे सब लक्षण द्वारा अङ्कित श्रीकृष्ण के चरण युगल सर्वोत्कृष्टता को प्राप्त होवे। १६। ६।

रूप चिन्तामणि में— २७

अर्द्ध चन्द्र, कलस, त्रिकोण, धनु, आकाश, गोष्पद, प्रोष्ठिका, शङ्क, ये सब वाम चरण में है, दक्षिण पदमें अष्टकोण, स्वस्तिक, चक्र,

पद्धतिः

चक्रं च्छत्र-यवांकुशं ध्वज-पवि-जम्बूर्ध्वरेखाम्बुजं
विभ्राणं हरिमूनविंशतिमहालक्ष्मार्चितङ्घ्रि भजे ।।' इति।।२७।।

ध्वजादीनां धारणस्थानं प्रयोजनश्चोक्तं स्कान्दे—

'दक्षिणस्य पदोऽङ्गुष्ठमूले चक्रं विभर्त्यजः ।
तत्र नम्रजनस्यारिषड्वर्गच्छेदनाय सः ।। २८।।
मध्यमांगुलिमूले तु धत्ते कमलमच्युतः ।
ध्यातृचित्तद्विरेफाणां लोभनायातिशोभनः ।। २९ ।।
पद्मस्याधो ध्वजं धत्ते सर्वानर्थजयध्वजम् ।
कनिष्ठामूलतो वज्रं भक्तपापाद्रिभेदनम् ।। ३० ।।
पार्ष्णिमध्येऽङ्कुशं भक्तचित्तेभ-वशकारणम् ।
भोगसम्पन्मयं धत्ते यवमङ्गुष्ठपर्वणि
वज्रं वै दक्षिणे पार्श्वे अंकुशो वै तदग्रतः ।।' इति।।३१।।

तत्रैव स्कान्दे कृष्णमधिकृत्योक्तत्वात् कनिष्ठामूलेऽङ्कुशस्तत्तले

छत्र, यव, अंकुश, ध्वज, पवि, जम्बूर्द्ध रेखा, अम्बुज, श्रीहरिके चरण उक्त ऊनविंशति रेखाङ्कित श्रीकृष्णचरण युगल का मैं भजन करता हूँ।

ध्वजादि चिह्नों का धारण स्थान एवं प्रयोजन स्कन्द पुराण में कथित है—

दक्षिण पद के अंगुष्ट मूलमें श्रीभगवान चक्र धारण करते है, नम्रजन के अरिवर्गको हनन करने के लिए ही चक्र धारण करते हैं। २८।

मध्यमा अंगुली के मध्य देश में अच्युत कमल धारण करते हैं, ध्यानकारी व्यक्ति के चित्तको भ्रमरकी भाँति लुब्ध करने के लिए अति सुन्दर कमल धारण करते हैं। २९।

पद्म के निम्न भाग में ध्वज का धारण करते हैं, यह सर्वानर्थ जय ध्वज है, कनिष्ठा अंगुली के मूल देश में बज्र है, वह भक्त पापाद्रि भेदन परायण है। ३०।

पार्ष्णि (एड़ी) मध्यमें अंकुश-भक्तचित्तरूप हस्ती को बश करने के लिए है। भोग सम्पद प्रचुर यवचिह्न को अंगुष्ठ पर्वमें (पोरमें) धारण करते हैं। दक्षिण पार्श्व में बज्र एवं उसके अग्रभागमें अंकुश की स्थिति है। ३१।

स्कन्द पुराणमें श्रीकृष्ण को लक्ष्यकर कथित हुआ है—
कनिष्ठा मूले अंकुश उसके नीचे बज्र साम्प्रदायिक गण इस प्रकार कहते

वज्रमित्याहुः साम्प्रदायिकाः। पार्ष्णावंकुशस्तु नारायणादेर्ज्ञेयः। तदेव चक्र-ध्वज-कलस-वज्रांकुश-यवा इति षट्चिह्नानि कृष्णस्य दक्षिण-चरणेऽन्यान्यपि चिह्नानि वैष्णवतोषणीं दृष्ट्वा लिख्यन्ते—"अंगुष्ठ-तर्जनी-सन्धिमारभ्य यावदर्द्ध चरणमूर्द्ध रेखा (७), चक्रस्य तले छत्रं (८), अर्द्ध चरणतले चतुर्दिगवस्थितं स्वस्तिकचतुष्टयं (९), स्वस्तिक-चतुःसन्धिषु जम्बूफलचतुष्टयं (१०), स्वस्तिकमध्ये अष्टकोणमित्येकादश चिह्नानि (११), 'तथा वामपदांगुष्ठमूलतस्तन्मुखं दरम्। सर्वविद्या-प्रकाशाय दधाति भगवानसौ॥' इति (१), मध्यमामूले अम्वरमन्त-र्वाह्यमण्डलद्वयात्मकं (२), तदधः कार्मुकं विगतज्यं (३) तदधः गोष्पदं (४) तत्तले त्रिकोणं (५), तदभितः कलसानां चतुष्टयं क्वचित् त्रितयञ्च दृष्टम् (६), त्रिकोणतले अर्द्ध चन्द्रोऽग्रद्वयस्पृष्टत्रिकोणद्वयं (७), तदधो मत्स्य (८), इत्यष्टौ मिलित्वा ऊनविंशतिः।"

अथ धीरललितनायको यथा श्रीभक्तिरसामृतसिन्धौ (२।१।२३०)—

(क)

हैं। पार्ष्णिमें अंकुश श्रीनारायणादि के चरण में जानना होगा। इस प्रकार चक्र-ध्वज-कलस वज्रांकुश-यव ये षट् चिह्न श्रीकृष्ण के दक्षिण चरण में, अर्थात् चिह्नो को वैष्णव-तोषणी को देखकर लिखते है, अंगुष्ठ-तर्जनी-सन्धि को आरम्भ कर अर्द्ध चरण पर्यन्त उर्द्ध रेखा है,(७) चक्र के नीचे छत्र (८) अर्द्ध चरण के नीचे चतुर्दिक में अवस्थित चार स्वस्तिक चिह्न है (९) स्वस्तिक के चारो सन्धिस्थलपर जम्बुफल चतुष्टय है' (१०) स्वस्ति के मध्य में अष्टकोण मण्डल है, (११) यह एकादश चिह्न है। इस प्रकार वाम पदांगुष्ठ मूलसे मुख पर्यन्त दर शङ्ख है, भगवान् सर्व विद्या प्रकाशन के लिए धारण करते है।(१) इस प्रकार मध्यमा के मूल देश में आकाश अन्तर और वाह्यात्मक दो मण्डल है (२) उसके नीचे गुण रहित कार्मुक है (३), उसके नीचे गोष्पद है (४), उसके नीचे त्रिकोण है (५), चारों और ४ कलस है वहीं पर तीन कलसका उल्लेख देखा जाता है (६), त्रिकोण के नीचे अर्द्ध चन्द्र, अग्रद्वयस्पृष्ट त्रिकोण द्वय विद्यमान है। उसके चारों और चार कलस है एवं त्रिकोण के नीचे अर्द्ध चन्द्र एवं अग्रद्वय स्पृष्ट दो त्रिकोण है।७। उसके नीचे मत्स्य (८) ये अष्टमिलकर ऊनविंशतिः है।

धीरललितनायक का वर्णन भक्तिरसामृतसिन्धु (२।१।२३०) में—

धीरललित वह है जो विदग्ध, नवतारुण्य, परिहासविशारद,

पद्धतिः

"विदग्धो नवतारुण्यः परिहासविशारदः ।
निश्चिन्तो धीरललितः स्यात् प्रायः प्रेयसीवशः ॥३२॥

यथा— वाचा सूचितशर्वरीरतिकलाप्रागल्भ्यया राधिकां
व्रीड़ाकुञ्चितलोचनां विरचयन्नग्रे सखीनामसौ ।
तद्वक्षोरुहचित्रकेलिमकरीपाण्डित्यपारं गतः
कैशोरं सफलीकरोति कलयन् कुञ्जे विहारं हरिः ॥"३३॥

अथ शेषकैशोरम् (भ० र० सि० २।१।३२७—३७५)—

"पूर्वतोऽप्यधिकोत्कर्षं वाढ़मङ्गानि बिभ्रति ।
त्रिवलिव्यक्तिरित्याद्यं कैशरे चरमे सति ॥३४॥

यथा— मरकतगिरेर्गण्डग्रावप्रभाहर-वक्षसं
शतमखमणिस्तम्भारम्भप्रमाथि-भुजद्वयम् ।
तनु-तरणिजा-वीचिच्छायाविड़म्बि-वलित्रयं
मदनकदली-साधिष्ठोरुं स्मराम्यसुरान्तकम् ॥३५॥

तन्माधुर्य्यं यथा—

दशार्द्धशरमाधुरीदमन-दक्षयाङ्गश्रिया
विधूनित-वधूधृतिं वरकलाविलासास्पदम् ।

निश्चिन्त, प्रायश प्रेयसीवश होता है । ३२ । उदाहरण—

सखीयों के समीपमें प्रगलभवाणी से राधिका की गत रात्रि की उद्भट् केलिकला का वर्णन करते थे, लज्जासे राधिका के नेत्र युगल कुञ्चित होनेपर राधिका के वक्षःस्थल पर कृष्णने केलिमकरी का चित्रण कर पाण्डित्य की पराकाष्ठा को प्राप्त करलिया, इस प्रकार कुञ्ज में विहार कर हरि अपना यौवन की सफल बनाया । ३३

शेष कैशोर (भ० र० सि० २।१।३२७—३७५)—

चरम कैशोर वयस प्राप्त होनेपर पूर्वसे भी अधिक उत्कर्ष अङ्गों का होता है । और त्रिवलि की अभिव्यक्ति भी होती है । ३४

उदाहरण—

असुरान्तक श्रीकृष्ण के वक्ष.स्थल मरकत गिरि की प्रभा को हरण करता है, भुजद्वय इन्द्रनीलमणि विरचित स्तम्भको भी जय करते है, श्रीअङ्गमें यमुना की लहरी की शोभा को पराभव कारी त्रिवली विराजित है। उरुयुगल मदन कदली से भी अधिक सुन्दर है।३५

तन्माधुर्य्य—

दृगञ्चलचमत्कृति-क्षपित-खञ्जरीट-द्युतिं
स्फुरत्तरुणिमोद्गमं तरुणि पश्य पीताम्बरम् ।।३६।।
इदमेव हरेः प्राज्ञैर्नवयौवनमुच्यते ।
अत्र गोकुलदेवीनां भावसर्वस्वशालिता ।
अभूतपूर्व-कन्दर्पतन्त्रलीलोत्सवादयः ।।३७।।

यथा— कान्ताभिः कलहायते क्वचिदयं कन्दर्पलेखान् क्वचित्
कीरैरर्पयति क्वचिद्वितनुते क्रीडाभिसारोद्यमम् ।
सख्या भेदयति क्वचित् स्मरकलाषाड् गुण्यवानीहते
सन्धिं क्वाप्यनुशास्ति कुञ्जनृपतिः शृङ्गारराज्योत्तमे ।।३८

तन्मोहनता, यथा—
कर्णाकर्णि सखीजनेन विजने दूतीस्तुतिप्रक्रिया
पत्युर्वञ्चनचातुरी गुणनिका कुञ्जप्रयाणे निशि ।

हे तरुणि ! पीताम्वर कृष्ण को देखो, अङ्ग कान्ति से कन्दर्प की माधुरी को दमन करते हैं, वह कुलवधूयों के धैर्य बिनाशी विलासास्पद है, चञ्चल नयनाञ्चल खञ्जरीट की द्युतिको परभूत करता है, तारुण्य के उद्गम से पीताम्वर कृष्ण अतिशय शोभित है । ३६

विद्वान् गण श्रीहरि की उक्त अवस्था को नवयौवन कहते है, वह समय ही गोकुल देवियों को भावसर्वस्व शालिता को प्राप्त करता है, और उसी समय अभूतपूर्व-कन्दर्प-तन्त्र-लीलोत्सवादि होते हैं ।३७

उदाहरण—

किसी कुञ्ज में कभी कान्ताओं के साथ प्रेम कलह में प्रवृत्त हैं, कभी कीरों से कन्दर्पलेखों को प्रेयसी के पास प्रेरण करते हैं, कभी क्रीड़ा अभिसार के लिए प्रयत्न परायण होते हैं, कहींपर सखीको वञ्चना करते हैं तो कभी स्मर कलाका षाड् गुण्य को प्रयोग करते हैं, कहींपर सन्धि स्थापन करते हुए दिखाई पड़ते हैं, इसप्रकार कुञ्जनृपति शृङ्गार राज्योत्तम में अनुशासनरत हैं । ३८

तन्मोहनता,—यथा—

हे कृष्ण ! तुह्मारे कैशोर गुरुने आज गौरीगण को पाठ पढ़ाना सुरु कर दिया है, वे सब विजनमें सखीजन के साथ काण काण में बात करती हैं, दूती प्रेरण प्रक्रिया का भी अनुष्ठान करती हैं, पति वञ्चन चातुरी का भी अभ्यास करती हैं; रातमें कुञ्ज गमन के लिऐ कौशल

पद्धतिः

वाधिर्य्यं गुरुवाचि वेणुविरुतावुत्कर्णतेति व्रतान्
कैशोरेण तवाद्य कृष्ण गुरुणा गौरीगणः पाठ्यते ॥३९॥
नेतुः स्वरूपमेवोक्तं कैशोरमिह यद्यपि ।
नानाकृतिप्रकटनात्तथाप्युद्दीपनं मतम् ॥४०॥
वाल्येऽपि नवतारुण्यप्राकट्यं श्रूयते क्वचित् ।
तन्नातिरसवाहित्वान्न रसज्ञैरुदाहृतम् ॥४१॥

अथ सौन्दर्य्यम्—

भवेत् सौन्दर्य्यमङ्गानां सन्निवेशो यथोचितम् ॥४२॥

यथा— मुखं ते दीर्घाक्षं मरकततटीपीवरमुरो
भुजद्वन्द्वं स्तम्भद्युतिसुवलितं पार्श्वयुगलम् ।
परिक्षीणो मध्यः प्रथिमलहरीहारि जघनं
न कस्याः कंसारे हरति हृदयं पङ्कजदृशः ॥४३॥

अथ रूपम्—

विभूषणं विभूष्यं स्याद्येन तद्रूपमुच्यते ॥४४॥

उद्‌भावन करती है, गुरुजन की वाणी सुनने में तो वैहरा हो जाती है, और वेणुध्वनि उत्कर्ण होकर सुनती है, ये सव व्रतों को तुह्मारे कैशोर गुरुने अभ्यास कराया है ।३९

यद्यपि नेता का स्वरूप ही कैशोर है, इस प्रकरण में कहा गया है, तथापि नानाकृति के प्रकटन से वह उद्‌दीपन भी होता है ।४०

कदाचित् शास्त्र में वाल्य में भी नवतारुण्य प्रकटन का विवरण देखने में आता है, किन्तु वह अत्यन्त रस पोषक न होने के कारण रसज्ञों ने उसका उदाहरण प्रस्तुत नहीं किया है । ४१

सौन्दर्य्य—अङ्गों का यथोचित सन्निवेश को सौन्दर्य्य कहते हैं ।

उदाहरण—श्रीकृष्ण का मुखमण्डल सुदीर्घ नेत्रों से शोभित हैं, मरकतमणि पर्वत के तट देश की भाँति अतिस्थुल बक्षःस्थल हैं, भुजद्वय स्तम्भ के समान है, सुन्दर गठन युक्त पार्श्वद्वय भी है, कटिदेश अतिक्षीण है, जघन द्वय मनोरम स्थुल है, ऐसी कोई कमल नयनी नही है, जिसका हृदय श्रीकृष्णसौन्दर्य्य से आकृष्ट नही हुआ है । ४३

रूप— रूप उसको कहते है, जो विभूषण कोभी भूषित करता है ।४४

यथा— कृष्णस्य मण्डनततिर्मणिकुण्डलाद्या
नीताङ्गसङ्गतिमलङ्कृतये वराङ्गि ।
शक्ता बभूव न मनागपि तद्विधाने
सा प्रत्युत स्वयमनल्पमलङ्कृतासीत् ।।४५।।

अथ मृदुता—
मृदुता कोमलस्यापि संस्पर्शासहतोच्यते ।।४६।।

यथा— अहह नवाम्बुदकान्ते,-रमुष्य सुकुमारता कुमारस्य ।
अपि नवपल्लवसङ्गा,-दङ्गान्यपरज्य शीर्य्यन्ति ।।४७।।
ये नायकप्रकरणे वाचिका मानसास्तथा ।
गुणाः प्रोक्तास्त एवात्र ज्ञेया उद्दीपना बुधैः ।।४८।।

अथ चेष्टाः—
चेष्टा रासादिलीलाः स्युस्तथा दुष्टवधादयः ।।४९।।

तत्र रासो यथा—
नृत्यद्गोपनितम्बिनीकृतपरिरम्भस्य रम्भादिभि-
र्गीर्वाणीभिरनङ्गरङ्गविवशं संदृश्यमानश्रियः ।

उदाहरण— हे वराङ्गि ! मणि कुण्डल प्रभृति श्रीकृष्ण के मण्डन समूह श्रीकृष्णाङ्ग को अलङ्कृत करने के लिए अङ्ग सङ्ग को प्राप्त करते है, किन्तु वे सब श्रीकृष्णाङ्ग को स्वल्प भी अलङ्कृत नही कर पाते, किन्तु स्वयं अतिशय रूपसे शोभित हो जाते हैं । ४५

मृदुता—
कोमल का भी संस्पर्श असहनशीलता का नाम मृदुता है । ४६

उदारुरण— आश्चर्य है कि कुमार नवाम्बुदकान्ति श्रीकृष्ण की सुकुमारता अभिनव है; नव पल्लव के संस्पर्श से भी अङ्ग समूह व्यथित होते है । ५७

नायक प्रकरण में वाचिक-एवं मानस गुण समूह कहागया है, प्रस्तुत प्रकरण में वे सवही उद्दीपन होगें । ४८

चेष्टा—रासादि लीला एवं दुष्ट वधादिको चेष्टा कही जाती है । ४९

रास का उदाहरण— गोपनितम्बिनियों के साथ दृढ़तर परिरम्भनादि के साथ अभिनव नृत्यकलाका विस्तार करने पर, शोभा को देखकर देवबधुगणभी अनङ्ग रङ्ग विवश हो गई थीं । हे पुण्डरीकाक्ष ! रासारम्भरसार्थी क्रीड़ा ताण्डव पण्डित आपकी मधुरिमा

पद्धतिः

क्रीड़ाताण्डवपण्डितस्य परितः श्रीपुण्डरीकाक्ष ते

रासारम्भरसार्थिनो मधुरिमा चेतांसि नः कर्षति ॥५०॥

अथ प्रसाधनम्—

कथितं वसनाकल्पमण्डनाद्यं प्रसाधनम् ॥ ५१ ॥

तत्र वसनम्—

नवार्कारुण-काश्मीर-हरितालादि-सन्निभम् ।

युगं चतुष्कं भूयिष्ठं वसनं त्रिविधं हरेः ॥ ५२ ॥

तत्र युगम्—

परिधानं ससंव्यानं युगरूपमुदीरितम् ॥ ५३ ॥

यथा स्तवमालायां मुकुन्दाष्टके—

कनकनिवहशोभानिन्दि पीतं नितम्वे

तदुपरि नवरक्तं वस्त्रमित्थं दधानः ।

प्रियमिव किल वर्णं रागयुक्तं प्रियायाः

प्रणयतु मम नेत्राभीष्टपूर्त्तिं मुकुन्दः ॥ ५४ ॥

चतुष्कम्—चतुष्कं कञ्चुकोष्णीष-तुन्दवन्धान्तरीयकम् ॥ ५५ ॥

यथा— स्मेरास्यः परिहितपाटलाम्वरश्री,-

रुच्छन्नाङ्गः पुरटरुचोरु-कञ्चुकेन ।

हमारे चित्तको आकर्षण करती है । ५०

प्रसाधन—वसन आकल्प मण्डनादि को प्रसाधन कहते हैं । ५१

वसन— नवोदित सूर्यके समान अरुणवर्ण, कुङ्कुम हरितालादि के समान पीतवर्ण, युग, चतुष्क, भूयिष्ठ नामक तीन प्रकार वसन श्रीहरि धारण करते हैं । ५२

युग— परिधान एवं संव्यान (उत्तरीय) को युगरूप वसन कहते हैं । ५३

स्तवमालान्तर्गत मुकुन्दाष्टक में—

कनक समूह की शोभा को तिरस्कार कारी तीन वसन नितम्व में शोभित है, उसके उपर नूतन रक्तवस्त्रको धारण करते हैं, मानों प्रियाका अनुराग के प्रति आसक्ति प्रकट के लिए है रागयुक्त वसनको धारण करते है, वह मुकुन्द मेरे नेत्र की इच्छा पूर्त्ति करेंगे । ५४

चतुष्क— कञ्चुक-उष्णीष-तुन्दबन्ध-उत्तरीय वसनको चतुष्क कहते है । ५५

उष्णीषं दधदरुणं धटीञ्च चित्रां,
कंसारिर्विहति महोत्सवे मुदं नः ।। ५६ ।।

भूयिष्ठम्—खण्डिताखण्डितं भूरि नटवेशक्रियोचितम् ।
अनेकवर्णं वसनं भूयिष्ठं कथितं बुधैः ।। ५७ ।।

यथा— अखण्डितविखण्डितैः सितपिशङ्गनीलारुणैः
पटैः कृतयथोचित-प्रकटसन्निवेशोज्ज्वलः ।
अयं करभराट्प्रभः प्रचुररङ्गशृङ्गारितः
करोति करभोरु मे घनरुचिर्मुदं माधवः ।। ५८ ।।

अथ आकल्पः—

केशबन्धनमालेपो मालाचित्रविशेषकः ।
ताम्बूलकेलिपद्मादिराकल्पः परिकीर्त्तितः ।। ५९ ।।

जूटः— स्याज्जूटः कवरी चूड़ा वेणी च कचबन्धनम् ।
पाण्डुरः कर्वुरः पीत इत्यालेपस्त्रिधा मतः ।। ६० ।।

माला— माला त्रिधा वैजयन्ती रत्नमाला वनस्रजः ।

टीका—वैजयन्ती पञ्चवर्णमयी, जानुपर्य्यन्तलम्बिता च ।

उदाहरण— स्मेर वदन कंसारि-पाटलवर्ण वस्त्र पहने हुए है, और सुवर्ण वर्णवसन के कञ्चुक से अङ्ग को ढके हुए हैं, अरुणवर्ण की पगड़ी शिरपर शोभित है, विचित्र वर्ण के धटी भी है, महोत्सव में हमारे अतिशय आनन्द वर्द्धन करते है । ५६

भूयिष्ठ— खण्डित अखण्डित अनेक वर्णयुक्त अनेक प्रकार नटवेश क्रिया के अनुरूप वसन को भूयिष्ठ कहते हैं । ५७

उदाहरण— सित-पिशङ्ग-नील-अरुणवर्ण के खण्डित एवं अखण्डित वसनोंकेद्वारा यथोचित उज्ज्वल वेष रचना हुई है, करभराज के समान प्रचुर विनोद लीलायुक्त माधव हे करभोरु ! मेरा आनन्द वर्द्धन करते है । ५८

आकल्प— केश बन्धन, आलेप, माला विशेष चित्र, अङ्गराग ताम्बूल केलि पद्म प्रभृति को आकल्प कहते हैं । ५९

जूट— कवरी, चूड़ा, वेणी, केशबन्धन को जूट कहते है ।

आलेप श्वेतरक्त, एवं चित्र विचित्र अनेकवर्ण, व पीतवर्ण का होता है । ६०

माला— माला तिन प्रकार 'वैजयन्ती, रत्नमाला' वनमाला

पद्धतिः

वनमाला पत्रपुष्पमयी पादपर्य्यन्तलम्बिता च ।
अस्या वैकक्षकापीड़-प्रालम्बाद्या भिदा मताः ॥ ६१ ॥
मकरीपत्रभङ्गाढ्यं चित्रं पीतसितारुणम् ।
तथा विशेषकोऽपि स्यादत्यदूह्यं स्वयं बुधैः ॥ ६२ ॥

यथा— ताम्बूलस्फुरदाननेन्दुरमलं धम्मिल्लमुल्लासयन्
भक्तिच्छेदलसत्सुघृष्टघुसृणालेपश्रिया पेशलः ।
तुङ्गोरःस्थलपिङ्गलस्रगलिक-भ्राजिष्णुपत्राङ्गुलिः
श्यामाङ्गद्युतिरद्य मे सखि दृशोर्दुग्धे मुदं माधवः ॥ ६३ ॥

अथ मण्डनम्—
किरीटं कुण्डले हारश्चतुष्की वलयोर्मयः ।
केयूर-नूपुराद्यश्च रत्नमण्डनमुच्यते ॥ ६४ ॥

यथा— काञ्ची चित्रा मुकुटमतुलं कुण्डले हारिहीरे
हारस्तारो वलयममलं चन्द्रचारुश्चतुष्की ।
रम्या चोर्मिर्मधुरिमपुरे नूपुरे चेत्यघारे-
रङ्गैरेवाभरणपटली भूषिता दोग्धि भूषाम् ॥ ६५ ॥
कुसुमादिकृतश्चेदं वन्यमण्डनमीरितम् ।

होता है, वैजयन्ती पञ्चवर्णमयी जानुपर्यन्त लम्बिता है, वनमाला पत्र पुष्पमयी पादपर्यन्त लम्बिता है, इसका वैकक्षक-आपीड़-प्रालम्ब आदि अनेक भेद भी है । ६१

उदाहरण— वदन कमलमें ताम्बूलराग सुन्दर शोभित है, केश बन्धन धम्मिल्ल उल्लास प्रदान करता है, मनोहर गन्ध चन्दनों से रचित भक्तिच्छेद (थुहर) अङ्ग को सुशोभित कररहा है ।

विस्तीर्ण उन्नत वक्षःस्थलपर विचित्रवर्ण की माला विराजित है, हे सखि ! श्यामाङ्ग द्युति माधव नेत्रानन्द को विस्तार करते है । मकरी पत्र चित्र पीत शुभ्र अरुण वर्ण के होते है, इसप्रकार विशेष विशेष चित्रभी बुधगण स्वयं उद्भावन करें । ६२।६३

मण्डन— किरीट, कुण्डल, हार, चतुष्की, वलय, अनन्त, केयूर-नूपुर प्रभृति को रत्नमण्डन कहते है । ६४

उदाहरण— विचित्र काञ्ची, अनुपम मुकुट, कुण्डल, हार, अमल वलय, हार पदक चतुष्की, मनोरम अङ्गुरीयक, मनोहर नूपुर प्रभृति आभरण समूह श्रीकृष्ण के अङ्गशोभा वर्द्धन करते हैं । ६५

धातुकलप्तश्च तिलकं पत्रभङ्गलतादिकम् ॥ ६६ ॥

अथ स्मितं, यथा कृष्णकर्णामृते (१।६६)—

अखण्डनिर्वाणरसप्रवाहै,-र्विखण्डिताशेषरसान्तराणि ।
अयन्त्रितोद्वान्तसुधार्णवानि, जयन्ति शीतानि तव स्मितानि ॥६७।

अङ्गसौरभं यथा—

परिमलसरिदेषा यद्वहन्ती समन्तात्,
पुलकयति वपुर्नः काप्यपूर्वा मुनीनाम् ।
मधुरिपुरुपरागे तद्विनोदाय मन्ये,
कुरुभुवमनवद्यामोदसिन्धुर्विवेश ॥ ६८ ॥

अथ वंशः— ध्यानं बलात् परमहंसकुलस्य भिन्दन्,
निन्दन् सुधा-मधुरिमाणमधीरधर्मा ।
कन्दर्पशासनधुरां मुहुरेष शंसन्,
वंशीध्वनिर्जयति कंसनिसूदनस्य ॥ ६९ ॥
एष त्रिधा भवेद्वेणु-मुरली-वंशिकेत्यपि ॥ ७० ॥

कुसुम प्रभृति के द्वारा मण्डन रचित होने पर उसे वन्य मण्डन कहा जाता है, चित्र धातु के द्वारा पत्रभङ्ग लता आदि का चित्रस्वरूप ललाट में तिलक होता है । ६६

स्मित—कृष्णकर्णामृत (१।६६)में—

अखण्ड निर्वाण रस प्रवाह द्वारा अशेष रसान्तर विखण्ड़ित हुए है, अनर्गल सुधार्णव समूह निर्गत होते रहते है ऐसा शीत मधुर तुह्मारी स्मित हास्य जययुक्त हो । ६७

अङ्ग सौरभ— चारों ओर जिसके परिमल सरिता वहती रहती हैं, गन्ध से मौन व्रत रत हम सव के शरीर पुलकायित हो जाते हैं, मधुरिपु सूर्यग्रहण के उपलक्ष्यमें कुरुक्षेत्र पधारने पर ऐसा प्रतीत हुआ मानो अनवद्य आमोद सिन्धु ही कुरुक्षेत्रमें प्रविष्ट हुआ । ६८

वंश— कंस निसूदन की वंशीध्वनि जययुक्ता हो, जो बल पूर्वक परमहंस कुल के ध्यान को तोड़ देती है, सुधा का माधूर्य का न्यक्कार करती हैं, कन्दर्प शासन तन्त्रको पुनः पुनः प्रतिष्ठित करती रहती है । ६९

यह वंश तिन प्रकार के होते है- वेणु-मुरली-वंशिका । ७०

पद्धतिः

तत्र वेणुः— पारिकाख्यो भवेद्वेणुर्द्वादशाङ्गुलदैर्घ्यभाक् ।
स्थौल्येऽङ्गुष्ठमितः षड्भिरेष रन्ध्रैः समन्वितः ॥७१॥

मुरली— हस्तद्वयमितायामा मुखरन्ध्रसमन्विता ।
चतुःस्वरच्छिद्रयुक्ता मुरली चारुनादिनी ॥ ७२ ॥

वंशी— अर्द्धाङ्गुलान्तरोन्मानं तारादि-विवराष्टकम् ।
ततोऽङ्गुल्यन्तरे यत्र मुखरन्ध्रं तथाङ्गुलम् ॥७३॥
शिरो वेदाङ्गुलं पुच्छं त्र्यङ्गुलं सा तु वंशिका ।
नवरन्ध्रा स्मृता सप्तदशाङ्गुलमिता बुधैः ॥७४॥
दशाङ्गुलान्तरा स्याच्चेत् सा तारमुखरन्ध्रयोः ।
महानन्देति विख्याता तथा संमोहिनीति च ॥७५॥
भवेत् सूर्यान्तिरा सा चेत्तत आकर्षिणी मता ।
आनन्दिनी तदा वंशी भवेदिन्द्रान्तरा यदि ॥७६॥
गोपानां वल्लभा सेयं वंशुलीति च विश्रुता ।
क्रमान्मणिमयी हैमी वैणवीति त्रिधा च सा ॥७७॥

वेणु— पारिका नामक वेणु लम्वाई में द्वादश अङ्गुल, मोटाई में अङ्गुष्ठ की भाँति, एवं षट् छिद्र समन्वित होती है । ७१

मुरली— विस्तार में हस्तद्वय परिमिता, मुखमें छिद्रयुक्ता चारस्वर के छिद्रयुक्त चारुनादिनी मुरली होती है । ७२

वंशी— अर्द्ध अङ्गुल के व्यवधानपर तारादि आठ छिद्र होते हैं, उससे एक अङ्गुली के अन्तर मुख छिद्र होता है । ७३

शिर चार आंगुल के होता हैं, पुच्छ तिन अङ्गुली की होती है, इसमें नव छिद्र होते है, ओर परिमाणमें यह सप्तदश अङ्गुली की होने से यह वंशिका कही जाती है । ७४

वह वंशिका यदि मुखछिद्र और स्वरछिद्रमें व्यवधान दश अंगुली का हो तो उसे महानन्दा कही जाती, इसका अपर नाम सम्मोहिनी है।

द्वादश अङ्गुली के व्यवधान यदि उक्त छिद्रमें हो तो उसे आकर्षिणी कही जाती है, चतुर्दश अङ्गुली व्यवधान होने पर इसे आनन्दिनी कही जाती है । ७६

गोपों की अतिप्रिय वह वंशी वंशुली नाम से विख्यात है, क्रमसे वह वंशी मणिमयी, हैमी, वेणवी रूपसे तिन प्रकार होती है । ७७

अथ शृङ्गम्—

शृङ्गन्तु गवलं हेमनिवद्धाग्रिमपश्चिमम् ।
रत्नजालस्फुरन्मध्यं मन्द्रघोषाभिधं स्मृतम् ॥७८॥

यथा—तारावली वेणुभुजङ्गमेन, तारावलीला-गरलेन दष्टा ।
विषाणिकानादपयो निपीय, विषाणि कामं द्विगुणीचकार ॥७९

अथ नूपुरं यथा—

अघमर्दनस्य सखि नूपुरध्वनिं, निशमय्य संभृतगभीरसम्भ्रमा ।
अहमीक्षणोत्तरलितापि नाभवं, वहिरद्य हन्त गुरवः पुरः स्थिताः ॥८०

अथास्य दासाः (भ० र० सि० ३।२।१६-१८)—

"दासास्तु प्रश्रितास्तस्य निदेशवशवर्तिनः ।
विश्वस्ताः प्रभुताज्ञान-विनम्रितधियश्च ते ॥८१॥
चतुर्धामी अधिकृताश्रितपारिषदानुगाः ॥"८२॥

अथ अनुगाः (भ० र० सि० ३।२।३८)—

"सर्वदा परिचर्य्यासु प्रभोरासक्तचेतसः ।
पुरस्थाश्च व्रजस्थाश्चेत्युच्यते अनुगा द्विधा ॥८३॥

शृङ्ग— शृङ्ग गवल नामसे प्रसिद्ध है, इसका अग्रभाग एवं शेषभाग सुवर्ण से निबद्ध होता है, मध्यस्थल रत्नजालसे शोभित होता है, मन्द्रस्वर युक्तभी होता है । ७८

उदाहरण— वेणुनाद रूप भुजङ्गम के विषसे हृदय जर्जरित हुआ तो था ही, शृङ्गनादरूप दुग्ध पान से कामरूप विष दुगुना होगया था । ७९

नूपुर— हे सखि ! अघमर्दन की नूपुर ध्वनि को सुनकर हृदय व्यग्रता से भर गया था, देखने के लिए मन चञ्चल होने पर भी मैं देख न सकी क्योंकि गुरुजन आज बाहर सामने ही खड़े थे । ८०

दासगण— दासगण-नम्र, आज्ञाकारी, विश्वस्त, प्रभुता ज्ञान सम्पन्न, एवं विनम्रित बुद्धि वाले होते हैं । ८१

अधिकृत, आश्रित, पारिषद, अनुग भेदसे चारप्रकार होते हैं । ८२

अनुग—(भ० र० सि० ३।२।३८)—

प्रभु की परिचर्यामें सर्वदा आसक्त चित्त, पुरस्थ एवं व्रजस्थ अनुग दो प्रकार होते है । ८३

अथ व्रजस्था: (भ० र० सि० ३।२।४१-५३)—

"रक्तक: पत्रक: पत्री मधुकण्ठो मधुव्रत: ।
रसाल: सुविलासश्च प्रेमकन्दो मरन्दक: ॥ ८४ ॥
आनन्दश्चन्द्रहासश्च पयोदो वकुलस्तथा ।
रसद: शारदाद्याश्च व्रजस्था अनुगा मता: ॥ ८५ ॥

एषां रूपं यथा—

मणिमयवरमण्डनोज्ज्वलाङ्गान्, पुरट-जवा-मधुलिट्-पटीरभास: ।
निजवपुरनुरूप-दिव्यवस्त्रान्, व्रजपतिनन्दन-किङ्करान्नमामि ॥८६॥

सेवा यथा—

द्रुतं कुरु परिष्कृतं वकुल पीतपट्टांशुकं
बरैरगुरुभिर्जलं रचय वासितं वारिद ।
रसाल परिकल्पयोरगलतादलैर्वीटिका:
परागपटली गवां दिशमरुन्ध पौरन्दरीम् ॥८७॥
व्रजानुगेषु सर्वेषु वरीयान् रक्तको मत: ॥८८॥

अस्य रूपं यथा—

रम्यपिङ्गपटमङ्गरोचिषा, खर्वितोरु-शतपर्विकारुचम् ।

व्रजस्थ—(भ० र० सि० ३।२।४१-५३)—

रक्तक, पत्रक, पत्री, मधुकण्ठ, मधुव्रत, रसाल, सुविलास प्रेमकन्द, मरन्दक । ८४

आनन्द, चन्द्रहास, पयोद, वकुल, रसद, शारद आदि व्रजस्थ अनुग हैं । ८५

इन सबके रूप— मैं व्रजपति नन्दन के उन किङ्करों को प्रणाम करता हूँ, जिनके अङ्ग मणिमय उत्तम मण्डनों से सुशोभित है, और सुवर्ण, जवा, मधुप, तथा चन्दन एवं मेघतुल्यवर्ण के है, और जो अपने अपने वर्णके अनुरूप दिव्य वस्त्र धारण किये हैं । ८६

सेवा— हे वकुल ! पीताम्वर परिष्कार सत्वर करो, हे वारिद ! सुगन्धि द्रव्य द्वारा जल सुवासित करो, हे रसाल ! ताम्बूल वीटिका का निर्माण सत्वर करो, देखो; पूर्वदिक् गोधूली से व्याप्त हो रही है । ८७

समस्त व्रजानुग में सवसे श्रेष्ठ रक्तक हैं । ८८

रूप— मैं गोष्ठ युवराज सेवारत रक्तकण्ठ रक्तकका आनुगत्य

सुष्ठु गोष्ठयुवराजसेविनं, रक्तकण्ठमनुयामि रक्तकम् ।।८९।।

भक्तिः, यथा—

गिरिवरभृति भर्तृदारकेऽस्मिन्, व्रजयुवराजतया गते प्रसिद्धिम् ।
शृणु रसद सदा पदाभिसेवा,-पटिमरता रतिरुत्तमा ममास्तु ।।९०।।

धुर्यो धीरश्च बीरश्च त्रिधा पारिषदादिकः ।। ९१ ।।

तत्र धुर्य्यः—

कृष्णेऽस्य प्रेयसीवर्गे दासादौ च यथायथम् ।
यः प्रीतिं तनुते भक्तः स धुर्य इह कीर्त्यते ।। ९२ ।।

अथ धीरः—

आश्रित्य प्रेयसीमस्य नातिसेवापरोऽपि यः ।
तस्य प्रसादपात्रं स्यान्मुख्यं धीरः स उच्यते ।। ९३ ।।

यथा— कमपि पृथगनुच्चैर्नाचरामि प्रयत्नं
यदुकुलकमलार्क त्वत्प्रसादश्रियेऽपि ।
समजनि ननु देव्याः पारिजातार्चितायाः
परिजननिखिलान्तःपातिनी मे यदाख्या ।। ९४ ।।

अथ वीरः—

करता हूँ, जो नवदूर्वादल के समान श्यामवर्ण के है और जिनके अङ्ग में रम्य नील पीत वर्ण युक्त वसन शोभित है । ८९

भक्ति— हे रसद ! सुनो, गिरिवरधारी नन्दनन्दन की चरण सेवा में मेरी उत्तमा रति हो जो सम्प्रति व्रजयुवराज नामसे विख्यात है । ९०

पारिषद् आदि धूर्य्य, धीर और वीर भेद से तिन प्रकार होते है ।९१

धूर्य्य— कृष्णमें, उनके प्रेयसी वर्गमें और दासादिमें जो यथायथ प्रीति करता है, इस प्रकरणमें उसको धूर्य्य कहते हैं । ९२

अथ धीर— जो प्रेयसी वर्गको आश्रय कर अवस्थात्त क्रते है, एवं श्रीकृष्ण की अतिशय सेवा न करने परभी उनका प्रसाद पात्र है, इसप्रकार आचरणकारी को मुख्य धीर कहते हैं । ९३

उदाहरण— हे यदुकुलकमलार्क ! तुह्मारे प्रसाद पात्रहोकरभी मैं पृथक् किसी प्रकार उग्र प्रयत्न नही करुँगा, पारिजात कुसुमद्वारा अर्चित देवी का नाम समस्त परिजनवर्ग में प्रधानरूपसे ख्यात हुआ । ९४

पद्धतिः

कृपां तस्य समाश्रित्य प्रौढ़ां नान्यमपेक्षते ।
अतुलां यो वहन् कृष्णे प्रीतिं वीरः स उच्यते ।।"इति ।।९५।।

अथ तद्वयस्याः(भ० र० सि० ३।३।८, १०, १६-१७, २१-५२)—

"रूप-वेष-गुणाद्यैस्तु समाः सम्यगयन्त्रिताः ।
विश्रम्भसंभृतात्मानो वयस्यास्तस्य कीर्तिताः ।। ९६ ।।
ते पुर-व्रजसम्बन्धाद्द्विविधाः प्राय ईरिताः ।। ९७ ।।

तत्र व्रजसम्बन्धिनः—

क्षणादर्शनतो दीनाः सदा सह-विहारिणः ।
तदेकजीविताः प्रोक्ता वयस्या व्रजवासिनः ।
अतः सर्ववयस्येषु प्रधानत्वं भजन्त्यमी ।। ९८ ।।

एषां रूपं यथा—

वलानुजसदृग्वयोगुणविलास-वेष-श्रियः
प्रियङ्करण-वल्लकीदलविषाणवेण्वङ्किताः ।
महेन्द्रमणिहाटकस्फटिकपद्मरागत्विषः
सदाप्रणयशालिनः सहचरा हरेः पान्तु वः ।।९९।।

❦ ❦ ❦

वीर— श्रीकृष्ण कृपा प्राप्त होकर जोजन अपर की अपेक्षा नही करता है, श्रीकृष्ण के प्रति अतुल प्रीति भी करता है, उसको वीर कहते हैं । ९५

तद् वयस्यगण—(भ० र० सि० ३।३।८, १०, १६, १७, २१-५२)—

श्रीकृष्ण का वयस्य वे होते हैं जो रूप-वेष-गुण प्रभृति में श्रीकृष्ण के सम होता है, और परिपूर्ण अधीनभी न होता सर्वथा विश्वस्त होता है । ९६

वेसव पुर और व्रज सम्बन्धसे दो प्रकार होते है । ९७

व्रज सम्बन्धी— श्रीकृष्णदर्शन क्षणकाल के लिए भी न होनेपर जो दीन होता है, और सह विचरण कारी होता है, श्रीकृष्ण ही एकमात्र जीवन है, इस प्रकार आचरण वाले व्रजवासी वयस्यगण निखिल वयस्यो में प्रधान है । ९८

इन सबका रूप— श्रीकृष्णके समान वय, गुण, विलास, वेष, शोभादि युक्त है, और प्रियङ्करण-वल्लकीदल-विषाण वेणुयुक्त है। नीलकान्तमणि, सुवर्ण, स्फटिक, पद्मराग की कान्ति की भाँति

सुहृदश्च सखायश्च तथा प्रियसखाः परे।
प्रियनर्मवयस्याश्चेत्युक्ता गोष्ठे चतुर्विधाः ॥ १०० ॥

तत्र सुहृदः—

वात्सल्यगन्धिसख्यास्तु किञ्चित्ते वयसाधिकाः।
सायुधास्तस्य दुष्टेभ्यः सदा रक्षापरायणाः ॥ १०१ ॥
सुभद्र-मण्डलीभद्र-भद्रवर्द्धन-गोभटाः।
यक्षेन्द्रभट-भद्राङ्ग-वीरभद्र महागुणाः।
विजयो बलभद्राद्याः सुहृदस्तस्य कीर्तिताः ॥ १०२ ॥

एषां सख्यं यथा—

धुन्वन् धावसि मण्डलाग्रममलं त्वं मण्डलीभद्र किं
गुर्वीं नार्य्य गदां गृहाण विजय क्षोभं वृथा मा कृथाः।
शक्तिं न क्षिप भद्रवर्द्धन पुरो गोवर्द्धनं गाहते
गर्जन्नेष घनो वली न तु वलीवर्दाकृतिर्दानवः ॥ १०३ ॥
सुहृत्सु मण्डलीभद्र-वलभद्रौ किलोत्तमौ ॥ १०४ ॥

जिनकी कान्ति है, सदा प्रणय परायण श्रीकृष्ण के सहचरगण तुम्हें रक्षा करें। ९९

गोष्ठ में सुहृद, सखा, प्रियसखा, प्रियनर्मसखा रूपसे वयस्य चार प्रकार होते है। १००

सुहृद— आवाल्य सख्य, वयसमें कुछ अधिक वयसान्वित, अस्त्र से सुसज्जित होकर निरन्तर दुष्टसे श्रीकृष्ण की रक्षामें जागरुक को सुहृद कहते हैं। १०१

सुभद्र-मण्डलीभद्र-भद्रवर्द्धन-गोभट, यक्षेन्द्रभट, भद्राङ्ग, वीरभद्र, विजय, वलभद्र आदि महागुणशाली व्यक्तिगण श्रीकृष्णके सुहृद होते हैं। १०२

इन सव के सख्य— इस प्रकार है, हे मण्डलीभद्र ! आगे आगे क्यों दौड़ रहे हो। हे विजय ! तुम वृथा क्षोभ न करो। हे आर्य्य ! गुरुतर गदा को न उठाओ। हे भद्रबर्द्धन ! शक्ति को न छोड़ो। देखो गोवर्द्धन पर्वत के और गरजता हुआ मेघ आरहा है, यह बैल की आकृति का दानव नहीं है। १०३

सुहृदों में मण्डलीभद्र और वलभद्र सर्वोत्तम है। १०४

पद्धतिः

तत्र मण्डलीभद्रस्य रूपं यथा—

पाटलपटलसदङ्गो, लकुटकरः शेखरी शिखण्डेन ।
द्युतिमण्डलीमलिनिभां, भाति दधन्मण्डलीभद्रः ॥ १०५ ॥

सख्यं यथा—

वनभ्रमणकेलिभिर्गुरुभिरह्नि खिन्नीकृतः
सुखं स्वपितु नः सुहृद्व्रजनिशान्तमध्ये निशि ।
अहं शिरसि मर्दनं मृदु करोमि कर्णे कथां
त्वमस्य विसृजन्नलं सुबल सक्थिनी लालय ॥ १०६ ॥

बलदेवस्य रूपं यथा—

गण्डान्तःस्फुरदेककुण्डलमलिच्छन्नावतंसोत्पलं
कस्तूरीकृतचित्रकं पृथुहृदि भ्राजिष्णु गुञ्जास्रजम् ।
तं वीरं शरदम्बुदद्युतिभरं संवीतकालाम्वरं
गम्भीरस्वनितं प्रलम्वभुजमालम्वे प्रलम्वद्विषम् ॥ १०७ ॥

सख्यं यथा—

जनितिथिरिति पुत्रप्रेमसंवीतयाहं
स्नपयितुमिह सद्यन्यम्वया स्तम्भितोऽस्मि ।

मण्डलीभद्र का रूप— पाटल पुष्प पत्रके समान सुन्दर अङ्ग, हाथमें लकुट, शिरमें मयूर पुच्छ से शिरो भूषण रचित है, भ्रमर के समान कान्तियुक्त मण्डलीभद्र शोभित है । १०५

सख्य— गुरुतर वन भ्रमण के कारण हमारे सखा कृष्ण अत्यन्त क्लान्त होगया है, रात्रिमें कृष्ण सुख पूर्वक निद्रित हो इसके लिए उपाय करना भी आवश्यक है, मैं मृदु भावसे मस्तक का मर्दन करूँ, तुम कान में चूप चूप वात मत करो, हे सुवल ! तुम, कृष्ण के पैर और घूटने आदि को दावो । १०६

बलदेवका रूप— गण्ड के अन्तः में शोभित एक मनोरम कुण्डल है, कर्ण भूषणरूप उत्पल के गन्ध से समाकृष्ठ भ्रमर गुन्जन कर रहा है । कस्तूरी द्वारा अङ्गमें सुन्दर चित्र रचित है, विपुल वक्षःस्थल पर प्रकाशशील गुन्जामाला शोभित है, शरद् कालीन अम्बुद के समान कान्ति, नीलवस्त्र परिधेय है, कण्ठस्वर अतिशय गम्भीर, सुदीर्घ वाहु वीर प्रलम्बारि की मैं शरण लेता हूँ । १०७

सख्य—आज जन्मतिथि है, माता के वचन से मैं स्नान आदि कृत्यों

इति सुबल गिरा मे संदिश त्वं मुकुन्दं
फणिपतिह्रदकच्छे नाद्य गच्छेः कदापि ॥ १०८॥

अथ सखायः—

कनिष्ठकल्पाः सख्येन सम्बद्धाः प्रीतिगन्धिना ।
विशाल-वृषभौजस्वि-देवप्रस्थ-वरूथपाः ॥ १०६ ॥
मरन्द-कुसुमापीड़-मणिबन्ध-करन्धमाः ।
इत्यादयः सखायोऽस्य सेवासौख्यैकरागिणः ॥ ११० ॥

एषां सख्यं यथा—

विशाल विसिनीदलैः कलय वीजनप्रक्रियां
वरूथप विलम्बितालकवरूथमुत्सारय ।
मृषा वृषभ जल्पितं त्यज भजाङ्गसम्वाहनं
यदुग्रभुजसङ्गरे गुरुमगात् क्लमं नः सखा ॥ १११ ॥
सर्वेषु सखिषु श्रेष्ठो देवप्रस्थोऽयमीरितः ॥ ११२ ॥

तस्य रूपं यथा—

विभ्रद्गेण्डुं पाण्डुरोद्भासवासाः, पाशाबद्धोत्तुङ्गमौलिर्वलीयान् ।
बन्धूकाभः सिन्धुरस्पर्धिलीलो, देवप्रस्थः कृष्णपार्श्वं प्रतस्थे ॥ ११३ ॥

के लिए घर में रहगया हूँ, तुम हमारी वात को कृष्ण को कह देना । और यहभी कहना कि कालीय ह्रद के समीप में आज न जाए । १०८

सखा— सखागण वयसमें कनिष्ठ है, और प्रीति सख्यसे आबद्ध है, विशाल, वृषभ-औजस्वि,-देवप्रस्थ-वरूथप, मरन्द-कुसुमापीड़-मणिबन्ध-करन्धम आदि सखागण सेवा सौख्य अनुराग पूर्ण हृदय के होते हैं । १०६-११०

सख्य— हमारे सखा उग्र वाल्यक्रीड़ा से क्लान्त होगये हैं, अतः हे विशाल ! पद्म पत्रके द्वारा वीजन करो, हे वरूथप ! इतस्ततः विक्षिप्त अलकावली को सम्हालदो, हे वृषभ ! व्यर्थ वात् न करो, अङ्ग का सम्वाहन करो । समस्त सखाओं में श्रेष्ठ देवप्रस्थ है । १११-११२

उनका रूप— देवप्रस्थ श्रीकृष्ण के समीपमें अवस्थान के लिए गमन कर रहा है, उसके हातमें गेंद है, श्वेत रक्त वर्णके वस्त्र पहिने है, शिरपर तुङ्ग पगड़ी शोभित है, उस की अङ्गकान्ति रक्तिम है, उसकी गति मत्तकरिवर की गति को पराजित करती है ।-११३

पद्धतिः

सख्यं यथा—

श्रीदाम्नः पृथुलां भुजामभि शिरो विन्यस्य विश्रामिणं
दाम्नः सव्यकरेण रुद्धहृदयं शय्याविराजत्तनुम् ।
मध्ये सुन्दरि कन्दरस्य पदयोः सम्वाहनेन प्रियं
देवप्रस्थ इतः कृती सुखयति प्रेम्णा व्रजेन्द्रात्मजम् ॥११४॥

अथ प्रियसखाः—

वयस्तुल्याः प्रियसखाः सख्यं केवलमाश्रिताः ।
श्रीदामा च सुदामा च दामा च वसुदामकः ॥ ११५ ॥
किङ्किणि-स्तोककृष्णांशु-भद्रसेन-विलासिनः ।
पुण्डरीक-विटङ्काक्ष-कलविङ्कादयोऽप्यमी ॥ ११६ ॥
रमयन्ति प्रियसखाः केलिभिर्विविधैः सदा ।
नियुद्ध-दण्डयुद्धादि-कौतुकैरपि केशवम् ॥ ११७ ॥

एषां सख्यं यथा—

सगद्गदपदैर्हरिं हसति कोऽपि वक्रोदितैः
प्रसार्य्य भुजयोर्युगं पुलकि कश्चिदाश्लिष्यति ।
करेण चलता दृशौ निभृतमेत्य रुन्धे परः
कृशाङ्गि सुखमयन्त्यमी प्रियसखाः सखायं तव ॥ ११८ ॥
एषु प्रियवयस्येषु श्रीदामा प्रवरो मतः ॥ ११९ ॥

(क)

सख्य— हे सुन्दरि ! जब कृष्ण श्रीदामके भुज को ताकियाकर कन्दराके मध्य विश्राम करते हैं, तब पद सम्वाहनप्रिय कृती देवप्रस्थ प्रेम पूर्वक पाद सम्वाहन द्वारा व्रजेन्द्रात्मज को सुखी करता है। ११४

प्रियसखा— समवयस्क प्रियसखा होता है, वे केवल सख्यभाव को अवलम्बन करके ही रहते है, श्रीदाम-सुदाम, दाम, वसुदाम ।११५

किङ्किणी-स्तोककृष्ण, अंशु-भद्रसेन,विलासी, पुण्डरीक-विटङ्काक्ष कलविङ्क आदि सखागण विविध क्रीड़ाद्वारा सदा नियुद्ध-दण्डयुद्धादि कौतुक प्रभृति द्वारा केशव को सुखी करते हैं। ११६-११७

सख्य— गदगदायमान वाणीयों से हास्यरस की सृष्टि करते है, वक्रोक्तिद्वारा श्रीहरि को सुखी करते है, कोई कोई बाहुद्वय को फैलाकर पुलकायित होकर कृष्ण को आलिङ्गन करते हैं। अपर कोई व्यक्ति रास्ता चलते समय कृष्ण की आँखें पीछे से हातों से ढक देता है। हे कृशाङ्गि ! तुम्हारे सखाको प्रियसखागण सुखी करते हैं। ११८

तस्य रूपम्—

वासः पिङ्गं विभ्रतं शृङ्गपाणिं, बद्धस्पर्धं सौहृदान्माधवेन।
ताम्रोष्णीषं श्यामधामाभिरामं, श्रीदामानं दामभाजं भजामि ॥१२०॥

सख्यं यथा—

त्वं नः प्रोज्झ्य कठोर यामुनतटे कस्मादकस्माद्गतो
दिष्टया दृष्टिमितोऽसि हन्त निविड़ाश्लेषैः सखीन् प्रीणय।
ब्रूमः सत्यमदर्शने तव मनाक् का धेनवः के वयं
किं गोष्ठं किमभीष्टमित्यचिरतः सर्वं विपर्य्यस्यति ॥१२१॥

अथ प्रियनर्म्मवयस्याः—

प्रियनर्मवयस्यास्तु पूर्वतोऽप्यभितो वराः।
आत्यन्तिक-रहस्येषु युक्ता भावविशेषिणः।
सुबलार्जुनगन्धर्वास्ते वसन्तोज्ज्वलादयः ॥१२२॥

एषां सख्यं यथा—

राधासन्देशवृन्दं कथयति सुबलः पश्य कृष्णस्य कर्णे
श्यामाकन्दर्पलेखं निभृतमुपहरत्युज्ज्वलः पाणिपद्मे।

❀

इन सव प्रिय वयस्यो में श्रीदाम प्रवर है। ११६

रूप— मैं श्रीदाम का भजन करता हूँ, जिनके परिधान में लाल-वस्त्र, हाथमें शृङ्ग, ताम्रवर्ण उष्णीष, अभिराम श्यामवर्णान्त देह, जो माधव के सौहार्द्ध से निरन्तर स्पर्द्धालु है। १२०

सख्य— हे कठोर कृष्ण। तुमने हम सवको छोड़कर अकस्मात् क्यों यमुना तटपर आया? अहो, भाग्यसे ही मिलगये देखो, सव सखायों को निविड़ आलिङ्गन से सुखी करो, देखो! मैं सत्य कहता हूँ। थोड़ाभी तुम्हारे अदर्शन से क्या-हमसव, क्या-गैयासव, क्या-गोष्ठ, क्या हमारे मन सवही तत्काल विपरीत अवस्थामें पड़ जाते हैं ॥१२१

प्रियनर्म वयस्यगण— प्रियनर्म वयस्यगण पहलेसे सवऔर श्रेष्ठ है, आत्यन्तिक रहस्यकार्थ में विशेष अंशग्रहण करते है, एवं विशेष-भाव परायण होते है, वे सव सुवल-अर्जुन-गन्धर्व-वसन्त-उज्ज्वल आदि हैं। १२२

इनसवका सख्य— देखो! सुवल राधा का सन्देश समूह कृष्ण के कानमें कहता है, निभृत में उज्ज्वल सखा कृष्णके पाणिकमलमें श्यामा का कन्दर्पलेख प्रदान करता है। चतुर सखा पालीसखी का ताम्बूल

पद्धतिः

पाली-ताम्बूलमास्ये वितरति चतुरः कोकिलो मूर्ध्नि धत्ते
तारादामेति नर्मप्रणयि-सहचरास्तन्वि तन्वन्ति सेवाम् ॥१२३
प्रियनर्मवयस्येषु प्रबलौ सुबलोज्ज्वलौ ॥१२४॥

तत्र सुबलस्य रूपं यथा—

तनुरुचिविजितहिरण्यं, हरिदयितं हारिणं हरिद्वसनम् ।
सुबलं कुवलयनयनं, नयनन्दितबान्धवं वन्दे ॥१२५॥

सख्यं यथा—

वयस्यगोष्ठ्यामखिलेङ्गितेषु, विशारदायामपि माधवस्य ।
अन्यैर्दुरूहा सुबलेन सार्द्धं, संज्ञामयी कापि वभूव वार्ता ॥१२६॥

उज्ज्वलस्य रूपं यथा—

अरुणाम्बरमुच्चलेक्षणं, मधुपुष्पवलिभिः प्रसाधितम् ।
हरिनीलरुचिं हरिप्रियं, मणिहारोज्ज्वलमुज्ज्वलं भजे ॥१२७॥

सख्यं यथा— शक्तास्मि मानमवितुं कथमुज्ज्वलोऽयं
दूतः समेति सखि यत्र मिलत्यदूरे ।
सापत्रपापि कुलजापि पतिव्रतापि
का वा वृषस्यति न गोपवृषं किशोरी ॥१२८॥

श्रीकृष्ण के वदनमें अर्पण करता है, कोकिल सखा तारा प्रदत्त सुन्दर माला धारण करारहा है, हे तन्वि ! देखो ! नर्म प्रणयि सहचरगण कृष्णकी सेवा कर रहे हैं । १२३

प्रियनर्भ वयस्यों में सुवल एवं उज्ज्वल ही प्रवल है । १२४

सुवल का रूप— देह कान्ति जिनकी सुवर्ण की पराभूत करती है, हरिद् वसन, माल्ययुक्त, कुवलयनयन, नय-नन्दित-वान्धव सुवल की वन्दना करता हूँ । १२५

सख्य— अखिल इङ्गित विशारद वयस्य गोष्ठीमें अन्य की दुरूहा संज्ञामयी वार्त्ता सुवल के साथ कृष्ण की होती रहती है । १२६

उज्ज्वल का रूप— अरुणाम्बर चपलनयन, आम्रकुसुम-शोभित हस्त, मणि हार से शोभित, इन्द्रनीलमणि के समान कान्ति, हरिप्रिय उज्ज्वल का मैं भजन करता हैं । १२७

इनका सख्य— हे सखि ! मैं मान रखने में समर्थ कैसे बनूँ ? देखो ! उज्ज्वल नामक दूत समीप में आकर मिल रहा है, लज्जाशीला पतिव्रता होकर भी कोन ऐसी किशोरी है जो गोपवृष कृष्ण के प्रति

उज्ज्वलोऽयं विशेषेण सदा नर्मोक्तिलालसः ।।१२९।।

यथा— स्फुरदतनुतरङ्गार्वद्धितानल्पवेलः
सुमधुररसरूपो दुर्गमावारपारः ।
जगति युवति-जातिर्निम्नगा त्वं समुद्र-
स्तदियमघहर त्वामेति सर्वाध्वनैव ।।१३०।।

एतेषु केऽपि शास्त्रेषु केऽपि लोकेषु विश्रुताः ।।"इति।।१३१।।

अथ गुरवः (भ० र० सि० ३।४।८-१३)—

"अधिकम्मन्यभावेन शिक्षाकारितयापि च ।
लालकत्वादिनाप्यत्र विभावा गुरवो मताः ।।१३२।।

यथा— भुर्य्यनुग्रहचितेन चेतसा, लालनोत्कमभितः कृपाकुलम् ।
गौरहेण गुरुणा जगद्गुरो,-गौरवं गणमगण्यमाश्रये ।।१३३।।
ते तु तस्यात्र कथिता व्रजराज्ञी व्रजेश्वरः ।
रोहिणी ताश्च वल्लव्यो याः पद्मजहृतात्मजाः ।।१३४।।
व्रजेश्वरी-व्रजाधीशौ श्रेष्ठौ गुरुजनेष्विमौ ।।१३५।।

कामुकी गैयाके तरह धावित नहीं होगी । १२८

यह उज्ज्वल विशेषकर सदा नर्मोक्ति में लालसा रखते है । १२९

उदाहरण— कृष्ण ! तुम रस समुद्र हो, विपुल तरङ्गावलीसे सुशोभित हो वेलाभूमि को भी तरङ्गद्वारा अतिक्रम करते रहते हैं, जगतमें युवति निम्नगा स्वरित् है, अतः समस्त भागोंसे सव युवति तुम्हें आकर मिलतीं हैं । १६०

इन सवों में कुछकी शास्त्र में और कुछकी लोक में प्रसिद्धि है ।१३१

अनन्तर गुरुगण— (भ० र० सि० ३।४।८-१३)—

गुरु भावनादि द्वारा प्रेरित होकर शिक्षादान प्रचेष्टाभी जिनमें रहती है, एवं लालक है इस प्रकार स्थायीभाव जिनमें रहता है, वेसव गुरुवर्ग होते है ।। १३२

उदाहरण—अतिशय अनुग्रह प्रवण चित्तसे लालन पालन करने के लिए निरन्तर कृपाकुल रहते हैं, गुरु गौरव के द्वारा जगद्गुरु श्रीकृष्ण के अगण्य ऐसे गौरव के पात्र होते हैं, इन सव की मैं शरण लेता हूँ ।१३३

श्रीकृष्ण के गुरुगण-व्रजेश्वरी-व्रजेश्वर-रोहिणी और ब्रह्मा जी के द्वारा अपहृत वालकों के स्थानापन्न वालको के गोपीगण है । १३४

व्रजेश्वरी और व्रजाधीश गुरुजनोंमें श्रेष्ठ हैं । १३५

पद्धतिः

तत्र व्रजेश्वर्य्या रूपं यथा श्रीदशमे (१०।६।३)—

क्षौमं वासः पृथुकटितटे बिभ्रती सूत्रनद्धं
पुत्रस्नेहस्नुतकुचयुगं जातकम्पञ्च सुभ्रूः ।
रज्ज्वाकर्षश्रमभुजचलत्कङ्कणौ कुण्डले च
स्विन्नं वक्त्रं कवरविगलन्मालती निर्ममन्थ ॥१३६॥

यथा वा—डोरी-जूटित-वक्रकेशपटला सिन्दूरविन्दूल्लसत्-
सीमन्तद्युतिरङ्गभूषणविधिं नातिप्रभूतं श्रिता ।
गोविन्दास्य-निसृष्ट-साश्रुनयनद्वन्द्वा नवेन्दीवर-
श्याम-श्यामरुचिर्विचित्रसिचया गोष्ठेश्वरी पातु वः ॥"१३७॥

श्रीकृष्णगणोद्देश-दीपिकायाञ्च यथा (२८-२६)—

"माता गोपयशोदात्री यशोदा श्यामलद्युतिः ।
मूर्ता वत्सलतेवासौ शक्रचापनिभाम्बरा ॥ १३८ ॥
नातिस्थूलतनुः किञ्चिद्दीर्घा मेचकमूर्धजा ।
ऐन्दवी कीर्तिदा यस्याः प्रिया प्राणसखी वरा ॥" १३६ ॥

❀

व्रजेश्वरी का रूप— पृथु कटिमें सूत्रनद्ध क्षौमवास शोभित है, पुत्र स्नेह से स्तनयुगल क्षरित होरहे है, अङ्गमें कम्पनभी है, रजुके आकर्षण-विकर्षणसे कङ्कण और कुण्डल चलायमान है, भुजद्वय में व्यकानभी परिस्फुट है, वदन कमल घर्म्म विन्दु से शोभित है, केशपास में स्थित मालती कुसुम इतस्ततः विक्षिप्त होरहे है, ऐसी अवस्था में यशोदा दधि मन्थन किया । १३६

औरभी— डोरी द्वारा वक्रकेश समूह जूड़ावद्ध रूपसे अवस्थित है । सीमन्त और ललाट में सिन्दूर रेखा उज्ज्वलरूप से शोभित है, अङ्गमें अप्रयोजनीय अतिशय भूषण भी नही है; गोविन्द के प्रति साश्रुपूर्ण नयना नवेन्दीवर के तुल्य श्याम कान्ति स्नेहपूर्ण हृदय गोष्ठेश्वरी तुमसवको रक्षा करें । १३७

श्रीकृष्णगणोद्देश दीपिकामें—(२८-२६)—

माता गोपयशोदात्री यशोदा श्यामलवर्णा है, वात्सल्य की साक्षात् मूर्त्तीमती विग्रह है, इन्द्रधनुके समान उनके परिधेय वसन है, तनु अतिशय स्थूल नही है, किञ्चिद् दीर्घ कृष्ण कुञ्चित केशपाश से शोभिता है, जिनकी प्राणसखी श्रेष्ठा प्रिया कीर्त्तिदा है । १३८-१३६

वात्सल्यं यथा रसामृतसिन्धौ (३।४।१४-१५)—

"तनौ मन्त्रन्यासं प्रणयति हरेर्गद्गदमयी
सवाष्पाक्षी रक्षातिलकमलिके कल्पयति च ।
स्नुवाना प्रत्यूषे दिशति च भुजे कार्मणमसौ
यशोदा मूर्त्तेव फुरति सुतवात्सल्यपटली ॥ १४० ॥

व्रजाधीशस्य रूपं, यथा—

तिलतण्डुलितैः कचैः स्फुरन्तं, नवभाण्डीरपलाशचारुचेलम् ।
अतितुन्दिलमिन्दुकान्तिभाजं, व्रजराजं वरकूर्चमर्चयामि ॥" १४१॥

श्रीकृष्णगणोद्देश-दीपिकायाम् (२३,२४,२७)—

"पिता व्रजजनानन्दो नन्दो भुवनवन्दितः ॥
तुन्दिलश्चन्दनरुचिर्बन्धुजीवनिभाम्बरः
तिलतण्डुलितं कूर्चं दधानो लम्बविग्रहः ॥ १४२ ॥
वृषभानुर्व्रजे ख्यातो यस्य प्रियसुहृद्वरः ॥" १४३ ॥

वात्सल्यं यथा रसामृतसिन्धौ (३।४।१६)—

❦

वात्सल्य- रसामृतसिन्धु (३।४।१४-१५) में—

श्रीहरि के अङ्गमें गदगदायमान वाणीसे रक्षा मन्त्र न्यास करती है, ललाट में वाष्पपूर्ण नयनों से तिलक अङ्कन करती है, प्रातःकाल में स्नेह स्नुत अन्तःकरण से कृष्ण के भुज में मन्त्रयन्त्र गण्डा बांधती है, इस प्रकार यशोदा सुत वात्सल्य पटली की मूर्त्तिमती रूपसे दिखाई देती है। १४०

व्रजाधीश का रूप— आधा कच्चा आधा पक्का केश के द्वारा शोभित है, परिधेय वसन नूतन वट पत्रके समान मनोहर है। अतिशय स्थूल देह, चन्द्रके समान शुभ्रवर्ण, उत्तम दाड़ीसे वदन कमल सुशोभित है ऐसे व्रजराज की मैं पूजा करता हूँ। १४१

श्रीकृष्णगणोद्देश दीपिकामें (२३-२४-२७)—

पिता व्रजजनानन्द नन्द भुवनवन्दिता है, स्थूलदेह, चन्दन के समान कान्ति, रक्तवसन परिधेय है, दाड़ी तिल तण्डुल के समान शोभित है, वसन रक्तवर्ण है, सुदीर्घ विग्रह है। जिनका सखा वृषभानु नामसे प्रसिद्ध वृषभानु महाराज है। १४२-१४३

वात्सल्य—रसामृतसिन्धु में—

पद्धतिः

"अवलम्ब्य कराङ्गुलिं निजां, स्खलदङ्घ्रि, प्रसरन्तमङ्गने ।
उरसि स्रवदश्रुनिर्झरो,मुमुदे प्रेक्ष्य सुतं व्रजाधिपः ।।" इति ।।१४४।।

अथास्य कान्तासु सर्वासु परममुख्यायाः श्रीराधायाः स्वरूपं वयो-वेशादयश्च निरूप्यन्ते यथा बृहद्गौतमीयतन्त्रे—

"देवी कृष्णमयी प्रोक्ता राधिका परदेवता ।
सर्वलक्ष्मीमयी सर्वकान्तिः सम्मोहिनी परा ।।" १४५ ।।

यथा ऋग्वेदे ब्रह्मभागे राधिकोपनिषदि—

"ॐ अथ ऊर्द्ध्वमन्थिन ऋषयः सनकाद्या भगवन्तं हिरण्यगर्भमुपासित्वोचुः—कः परमो देवः, का वा तच्छक्तयः, तासु चैका गरीयसी भवतीति सृष्टिहेतुभूता च, एभिः स होवाच—हे पुत्रका शृणुतेदं ह वाव गुह्याद्गुह्यतरमप्रकाश्यं यस्मै कस्मै न देयम् । स्निग्धाय ब्रह्मवादिने गुरुभक्ताय भक्ताय देयमन्यथा दातुर्मृत्युर्भवति । कृष्ण ह वै परमो देवः षड् विधैश्वर्य्यपूर्णो भगवान् गोपी-गो-गोपसेव्यो वृन्दाराधितो वृन्दावन-नाथः स एक एवेश्वरस्तस्य ह वै द्वैतनतनुर्नारायणोऽखिलब्रह्माधिपति-

❦

कराङ्गुलि को पकड़ाकर बालकृष्ण को चलना शिखाते है, अङ्गनमें चलते समय चरण स्खलित होता है, वक्षःस्थलपर अश्रुधारा प्रवाहित होती है, पुत्र को देखकर व्रजाधीश अति आनन्दित होते है।

अनन्तर कान्तायों में परम मुख्या श्रीराधाके स्वरूप-वयस-वेशादि का निरूपण करते हैं। बृहद्गौतमीयतन्त्र में वर्णित है—देवी कृष्णमयी परदेवता श्रीराधिका है, ये सर्वलक्ष्मीमयी सर्वकान्ति परा सम्मोहिनी है। १४५

ऋग्वेद के ब्रह्मभागस्थ राधिका उपनिषद् में उक्त है—ॐ अनन्तर ऊर्द्ध्वरेता सनकादि ऋषिगण भगवान् हिरण्यगर्भ की उपासना कर पुछे थे, परम देव कोन है ? उनकी शक्ति कोन है ? उन शक्तियों में एकही शक्ति श्रेष्ठा होगी और सृष्टि के मूल कारण स्वरूपाभी होगी ? भगवान् हिरण्यगर्भने कहा— हे पुत्रका ! सुनो। यह तत्त्व गोपनीय से भी गोपनीय है, अप्रकाश्य है, जिसकिसी को प्रदान करना उचित नही है। स्निग्ध, ब्रह्मवादि, गुरुभक्त को प्रदान करे अन्यथा दाता की मृत्यु होगी। कृष्ण ही परम देव है, और षड् विध ऐश्वर्य्य भगवान् गोपी-गो-गोप सेव्य वृन्दा आराधित वृन्दावननाथ एक ही ईश्वर है।

रेको हंसः पराचीनो नित्यः। एवं हि तस्य शक्तयस्त्वनेकधा सन्धिनी-ज्ञानेच्छाक्रियाद्या वहुधाः शक्तयस्तासु ह्लादिनी वरीयस परान्तर-सम्भुता राधा कृष्णेन आराध्यते इति राधा, कृष्णं समाराधयति सदा इति राधिका गान्धर्वीति व्यपदिशन्ति ताम्। अस्या एव कायव्यूह-रूपा गोप्यो महिष्यः श्रीश्चेति। सेयं राधा यश्च कृष्णो रसाब्धिः देह-श्चैकं क्रीड़ार्थं द्विधाभूत्। एषा ह वै सर्वेश्वरी सर्वविद्या सनातनी कृष्ण-प्राणाधिदेवा चेति विविक्तेन वेदाः स्तुवन्ति। यस्या गाथा ब्रह्मभागं वदन्ति, महिमास्या स्वायुर्मानेनापि कालेन वक्तुं न चोत्सहे, सैव यस्य प्रसीदति, तस्य करतलावकलितं परमं धामेति। एतामज्ञाय यः कृष्ण-माराधयितुमिच्छति, स मूढ़तमश्चेति। अथ हैतानि नामानि श्रुतयः-'राधा रासेश्वरी रम्या कृष्णमन्त्राधिदेवता। सर्वाद्या सर्ववन्द्या च वृन्दावनविहारिणी॥ वृन्दाराध्या रमाशेष-गोपी-मण्डल-पूजिता। सत्या सत्यपरा सत्यभामा श्रीकृष्णवल्लभा॥ वृषभानुसुता गोपी मूलप्रकृतिरीश्वरी। गान्धर्वी राधिका रम्या रुक्मिणी परमेश्वरी॥'

❀

उनका द्वितीय तनु नारायण अखिल ब्रह्माण्डाधिपति एक हंस पराचीन नित्य है। इसप्रकार उनकी शक्ति अनेक प्रकार है, सन्धिनी-ज्ञानेच्छा क्रिया प्रभृति अनेक विध शक्ति है, उनमें से ह्लादिनी शक्ति ही सर्व-श्रेष्ठा है, ह्लादिनी सारसम्भूता श्रीराधा है, कृष्ण द्वारा आराधिता होने के कारण नाम राधा है, कृष्ण की सम्यक् रूपसे आराधना सदा करती हैं, अतः राधिका गान्धर्वी नाम उनके हैं। इनकी कायव्युह रूप गोपीयां, महिषीवृन्द एवं लक्ष्मी श्री भी हैं, वह राधा और वह कृष्ण रसाब्धि है, एक देह है, क्रीड़ा के लिए दो होते हैं। वेदगण इनको ही सर्वेश्वरी, सर्वविद्या, सनातनी, कृष्णप्राणाधि देवी रूप पृथक् पृथक् नामसे स्तव करते हैं। जिनकी गाथा को ब्रह्मभाग कहते हैं, इनकी महिमा स्वायुमान कालके द्वारा कहने में मैं समर्थ नही हूँ। जिसके प्रति उनकी कृपा होती है, उसका करतलगत परमधाम होता है। श्रीराधा को न जानकर जो जन कृष्णाराधन करने की इच्छा करता है वह ही मूढ़तम है। उनके नाम समूह इस प्रकार है- राधा, रासेश्वरी, रम्या, कृष्ण मन्त्राधिदेवता, सर्वाद्या, सर्वबन्द्या, वृन्दावन-विहारिणी, वृन्दाराध्या रमाशेष-गोपी-मण्डल-पूजिता, सत्या सत्य-परा, सत्यभामा श्रीकृष्ण वल्लभा, वृषभानुसुता गोपी मूल प्रकृति

इत्येतानि नामानि यः पठेत्, स जीवन्मुक्तो भवति। इत्याह हिरण्यगर्भो भगवान् इति।

सन्धिनी तु धाम-भूषण-शय्यासनादि-मित्र-भृत्यादिरूपेण परिणता सत्यलोकावतारणसानन्दमयीरूपेण चेति ज्ञानशक्तिस्तु क्षेत्रज्ञशक्तिरिति, य इमामुपनिषदमधीते, सोऽनुव्रतो व्रती भवति, सर्वतीर्थेषु स्नातो भवति, सोऽग्निपूतो भवति, स वायुपूतो भवति, स सर्वपूतो भवति, राधाकृष्णप्रियो भवति—इत्याचक्षुषः पंक्ति पुनाति।" इति।

मधुरा यथा विदग्धमाधवे (१।३२)—

"वलादक्ष्नोर्लक्ष्मीः कवलयति नव्यं कुवलयं
मुखोल्लासः फुल्लं कमलवनमुल्लङ्घयति च।
दशां कष्टामष्टापदमपि नयत्याङ्गिकरुचि-
र्विचित्रं राधायाः किमपि किल रूपं विलसति॥"१४६॥

चारुसौभाग्यरेखाढचा यथोज्ज्वलनीलमणौ (श्रीराधाप्रकरणम् २४)—

"अघहर भज तुष्टिं पश्य यच्चन्द्रलेखा-
वलयकुसुमवल्लीकुण्डलाकारभाग्भिः।

ईश्वरी, गान्धर्वी, राधिका रम्या, रुक्मिणी परमेश्वरी, ये सव नाम का पाठ करता है, वह जीव मुक्त होगा, ये विवरण भगवान् हिरण्यगर्भ ने वोला।

सन्धिनी शक्ति धाम-भूषण शय्या आसनादि-मित्र भृत्यादि रूपमें परिणत होकर सत्यलोकावतारण-आनन्दमयी रूपमें दिखाई देती है, ज्ञानशक्ति ही क्षेत्रज्ञ है। जो जन इस उपनिषद् को पड़ेगा, वह अनुव्रत व्रती होगा, वह सर्व तीर्थमें स्नान करेगा, वह अग्निपूत होगा' वह वायुपूत होगा, वह सर्वपूत होगा श्रीराधाकृष्ण प्रसन्ना होंगे, और नेत्र सुख प्रदान करेंगे।

मधुरा, विदग्ध माधव(१।३२)में—नेत्रशोभा वलपूर्वक नूतन कुवलय की शोभा को कवलित करती है, मुख का उल्लास फुल्लकमलवन की शोभाको उल्लङ्घन करता है। अङ्गरुचि सुवर्णकान्ति को पराभूत करती है, श्रीराधा का रूप कुछ विचित्र रूप धारण किया है। १४६

चारु सौभाग्यरेखाढचा (उज्ज्वलनीलमणि-श्रीराधाप्रकरण २४) में— हे अघहर ! सन्तुष्ट हो, देखो, राधा छिपकर रहने परभी राधा की पदाङ्करेखा उनकी कह देती है, मधुमङ्गल ने कृष्णको कहा,

अभिदधति निलीनामत्र सौभाग्यरेखा-
वितितिभिरनुविद्धाः सुष्ठु राधां पदाङ्काः ॥"१४७॥

अस्यार्थः—अघहरेति मधुमङ्गलोक्तिः। पदाङ्का एव राधामत्र निलीनामभिदधति कथयन्ति। कीदृशाः? सौभाग्यव्यञ्जिकानां रेखाणां विततिभिरनुविद्धा युक्ताः। कीदृशीभिः? चन्द्रलेखाद्याकार-भाग्भिः, उपलक्षणमेतत्। यतो वराहसंहिता-ज्योतिः-शास्त्रान्तर-काशीखण्ड-मात्स्य-गारुड़ाद्यनुसारेण ता एताश्च रेखा लक्ष्यन्ते। तत्र वामचरणस्य अङ्गुष्ठमूले यवः, तत्तले चक्रं, तत्तले छत्रं, तत्तले वलयं, तर्ज्जन्यङ्गुष्ठसन्धिमारभ्य वक्रगतया यावदर्द्धचरणमूर्ध्वरेखा। मध्यमा-तले कमलं, कमलतले ध्वजः सपताकः, कनिष्ठातलेऽङ्कुशः, पार्ष्णौ अर्द्धचन्द्रः, तदुपरि वल्ली पुष्पञ्च—इत्येकादश। अथ दक्षिणचरणस्य-अङ्गुष्ठमूले शङ्खः, कनिष्ठातले वेदिः, तत्तले कुण्डलं, तर्जनी-मध्यमयो-स्तले पर्वतः, पार्ष्णौ मत्स्यः, तदुपरि रथः, रथस्य पार्श्वद्वये शक्तिः गदा इति अष्टौ मिलित्वा ऊनविंशतिः। अथ वामकरस्य—अत्रालिखि-तान्यपि भक्तैर्ध्यानार्थमपेक्षत्वादुच्यन्ते चिह्नानि। यथा तर्जनी-मध्य-

❀

श्रीराधा पदचिह्न सौभाग्य व्यञ्जक रेखा समूह से युक्त है, चन्द्रलेखा, वलय, कुसुमवल्ली कुण्डलाकार प्रभृति चिह्न समधिक देखने में आता है, यह सब उपलक्षण है, कारण वराह संहिता-ज्योतिष-शास्त्रान्तर-काशीखण्ड-मात्स्य एवं गरुड़ादि पुराणों के अनुसार जो रेखाएँ है, वे सबही श्रीराधा चरण कमलमें उपलब्ध है।१४७

वाम चरण के अङ्गुष्ठमूलमें यव, उसके नीचे चक्र, उसके नीचे छत्र, उसके नीचे वलय, तर्ज्जनी-अङ्गुष्ठ-सन्धिस्थल से आरम्भकर वक्रगतिसे अर्द्धचरण पर्यन्त ऊर्द्धरेखा। मध्यमा अङ्गुली के नीचे कमल, कमलके नीचे सपताक ध्वज, कनिष्ठा अङ्गुली के नीचे अंकुश, पार्ष्णिमें अर्द्ध चन्द्र, तदुपरि वल्ली-पुष्प ये एकादशचिह्न है।

दक्षिण चरण के अङ्गुष्ठ मूलमें शङ्ख, कनिष्ठा के नीचे वेदि, तत्तले कुण्डल, तर्जनी-मध्यमा-अङ्गुली के नीचे पर्वत, एड़ीमें मत्स्य, तदुपरि रथ, रथ के दोनों पासमें शक्ति-गदा-ये अष्ट है. दोनों मिलकर ऊनविंशति चिह्न है।

अनन्तर वामहस्त की रेखाएँ—उदाहरणमें उल्लेख न होने पर भी ध्यानके लिए भक्तकी आवश्यकता होती है, अतः उनसव चिह्न लिखते

पद्धतिः

मयोः सन्धिमारभ्य कनिष्ठाधस्तले करभ-भागे गता परमायुरेखा' तत्तले करभमारभ्य तर्जन्यङ्गुष्ठमध्यदेशं गतान्या ; अङ्गुष्ठाधो मणिवन्धत उत्थिता वक्रगत्या मध्यरेखां मिलित्वा तर्जन्यङ्गुष्ठयोर्मध्यभागं गतान्या; अथान्या युक्ता विभज्य दर्श्यन्ते । अङ्गुलीनामग्रतो नन्द्यावर्त्ताः पञ्चः; अनामिकातले कुञ्जरः, परमायूरेखातले वाजी, मध्यरेखातले वृक्षः, कनिष्ठातले अङ्कुशः, व्यजन-श्रीवृक्ष-यूप-वाण-तोमर-माला यथाशोभमित्यष्टादश । अथ दक्षिणकरस्य—पूर्वोक्तं परमायूरेखादित्रयमत्रापि ज्ञेयम् । अङ्गुलीनामग्रतः संख्याः पञ्च । तर्ज्जनीतले चामरं, अत्रापि कनिष्ठातले अंकुशः प्रासाद-दुन्दुभि-वज्रं शकटयुगकोदण्डासिभृङ्गारका यथाशोभं ज्ञेयाः—इति सप्तदश मिलित्वा पञ्चत्रिंशत् ।

रूपचिन्तामणौ यथा—

"छत्रारि -ध्वजवल्लि-पुष्पवलयान् पद्मोर्ध्वरेखाङ्कुशा-
नर्द्धेन्दुञ्च यवञ्च वाममनु या शक्ति गदां स्यन्दनम् ।
वेदी-कुण्डल-मत्स्य-पर्वत-दरं धत्तेऽन्वसव्यं पदं
तां राधां चिरमुनविंशतिमहालक्ष्मार्चिताङ्घ्रिं भजे ।।"१४८।।

हैं । तर्ज्जनी-मध्यमा की सन्धि से आरम्भ होकर कनिष्ठ के नीचे करभ-भागपर्यन्त गता परमायुरेखा । उसके नीचे करभ से लेकर तर्ज्जनी अङ्गुष्ठ के मध्यदेश पर्यन्त गता अन्य एक रेखा है । अन्य रेखाको विभाग करके लिखते हैं ।

अङ्गुलीयों के अगले भागमें (पोरमें) नन्द्यावर्त्त -'दक्षिणावर्त्त-शङ्ख'शङ्ख रेखा-पञ्च, अनामिका के तलमें कुञ्जर, परमायु रेखा के नीचे वाजी(अश्व), मध्य रेखाके नीचे वृक्ष, कनिष्ठा के नीचे अङ्कुश, व्यजन-श्रीवृक्ष(विल्ववृक्ष)-यूप-वाण-तोमर-माला भी यथास्थान में शोभित है, इसप्रकार अष्टादश (आठारह) रेखाएँ हैं । दक्षिण करमें पूर्वोक्त परमायुरेखादि तीन रेखाएँ यहाँपरभी जाननी होगी । अंगुलीयों के अग्रभागमें संख्या पञ्च, तर्जनीके नीचे चामर, यहाँपरभी कनिष्ठा के नीचे अङ्कुश-प्रासाद-दुन्दुभि-वज्र, शकट युग, कोदण्ड, असि, भृङ्गारक (जलपात्र) यथास्थान शोभित है, इसप्रकार सप्तदश के साथ मिलकर पञ्चत्रिंशत् (पँयत्रिंश) रेखाएँ हैं ।

रूपचिन्तामणि ग्रन्थमें लिखित है— छत्र, अरि-ध्वज-वल्लि-पुष्पवलय-पद्म-ऊर्द्ध रेखा-अङ्कुश-यव-ये सब वामपदमें एवं दक्षिण

आत्यन्तिकाधिका यथोज्ज्वलनीलमणौ (श्रीयूथेश्वरीभेदप्रकरणम् ६-७)-

"सर्वथैवासमोर्ध्वा या सा स्यादात्यन्तिकाधिका।
सा राधा सा तु मध्यैव यन्नान्या सदृशी व्रजे ॥ १४९ ॥

यथा— तावद्भद्रा वदति चटुलं फुल्लतामेति पाली
शालीनत्वं त्यजति विमला श्यामलाहङ्करोति।
स्वैरं चन्द्रावलिरपि चलत्युन्नमय्योत्तमाङ्गं
यावत् कर्णे न हि निविशते हन्त राधेति मन्त्रः ॥"१५०॥

अथ मध्या (उ० नी०, नायिकाभेदप्रकरणम् २७)—

"समानलज्जामदना प्रोद्यत्तारुण्यशालिनी।
किञ्चित्प्रगल्भवचना मोहान्तसुरतक्षमा।
मध्या स्यात् कोमला क्वापि माने कुत्रापि कर्कशा ॥"१५१॥

अथ व्यक्तयौवनम् (उ० नी०, उद्दीपनविभाव-प्रकरणम् १८-२०)—

"वक्षः प्रव्यक्तवक्षोजं मध्यश्च सुवलित्रयम्।
उज्ज्वलानि तथाङ्गानि व्यक्ते स्फुरति यौवने ॥१५२॥

पदमें शक्ति-गदा स्यन्दन-वेदी-कुण्डल-मत्स्य-पर्वत-दर है, इसप्रकार ऊन विंशति महाचिह्नयुक्त श्रीराधा चरण कमल का मैं भजन करता हूँ। १४८

आत्यन्तिक अधिका-(उज्ज्वलनीलमणि-श्रीयूथेश्वरी भेद प्रकरण-६-७में)— जो सर्वथा असमोर्द्ध है, उनको ही आत्यन्तिक अधिका कही जाती है। वह राधा ही है, और मध्याही है, उनके सदृशी अपर कोई भी व्रज में नही है। १४९

उदाहरण— तब तक ही भद्रा कुछ कह पाती है, और पालीभी उत्फुल होती है, विमला शालीनता को छोड़ती है, श्यामला भी अहंकार करती है, चन्द्रावली भी शिर उँचाकर चलती है, जबतक राधा नामरूप मन्त्र कर्ण कुहरमें प्रविष्ट नही होता है। १५०

अथ मध्या—(उ० नी० नायिकाभेद प्रकरण २७)— समान लज्जा मदना प्रोद्यत्तारुण्यशालिनी किञ्चित् प्रगल्भवचना मोहान्त सुरतक्षमा। मध्या नायिका है, कभी मानमें कोमला होती है, और कभी कर्कशा भी होती है। १५१

व्यक्त यौवन-(उ० नी० उद्दीपन विभाव-प्रकरण १८-२०)—

वक्षःस्थल प्रव्यक्त वक्षोज द्वारा शोभित है, मध्यदेश मनोरम

पद्धतिः

यथा— रथाङ्गमिथुनं नवं प्रकटयत्युरोजद्युति-
व्यनक्ति युगलं दृशोः शफरवृत्तिमिन्द्राबलि ।
विर्भति च वलित्रयं तव तरङ्गभङ्गोद्गमं
त्वमत्र सरसीकृता तरुणिमश्रिया राजसि ॥ १५३ ॥

तन्माधुर्य्यम्—
भ्राजन्ते वरदन्तिमौक्तिकगणा यस्योल्लिखद्भिर्नखैः
क्षिप्ताः पुष्करमालयावृतरुचः कुञ्जेषु कुञ्जेष्वमी ।
शौटीर्य्याब्धिरुरोजपञ्जरतटे संवेशयन्त्या कथं
स श्रीमान् हरिणेक्षणे हरिरभून्नेत्रेण बद्धस्त्वया ॥१५४॥

अथ रूपम्—
अङ्गान्यभूषितान्येव केनचिद्भूषणादिना ।
येन भूषितवद्भाति तद्रूपमिति कथ्यते ॥१५५॥

यथा दानकेलिकौमुद्याम् (२२)—
त्रपते विलोक्य पद्मा, ललिते राधां विनाप्यलङ्कारम् ।
तदलं मणिमयमण्डन,-मण्डलरचनाप्रयासेन ॥१५६॥

अथ लावण्यम्—

त्रिवलियुक्त है, समस्त अङ्गही यौवनकाल में परम उज्ज्वलता को धारण करते है । १५२

उदाहरण— उरोजद्युति नूतन रथाङ्ग मिथुनको प्रकट करती है, नेत्रयुगल छोटी मछली के समान चञ्चल होते है, मध्यदेश में तरङ्गरूप त्रिवली अतिशय शोभित है, हे राधे तुम तारुण्यलक्ष्मी से सरोवर समान दिखाई पड़ती है । १५३

तन्माधूर्य्य— हे हरिणेक्षणे ! जिनके नखराघात से कुञ्जरराजके मस्तक स्थित मुक्तासमूह इतस्ततः विक्षिप्त है, कुञ्ज कुञ्ज में सर्वत्र विक्षिप्त पद्ममाला द्वारा समावृत भूमि है, इसप्रकार शौर्य्य वीर्य्य के एकमात्र समुद्ररूप श्रीमान् हरि को तुमने कैसे नेत्रसे ही बद्ध करलिया ?

रूप— किसी भी भूषणद्वारा भूषित न होनेपरभी भूषित के समान जो प्रतीत होता है, उसको ही रूप कहते हैं । १५५

दानकेलि कौमुदी (२२) में— हे ललिते ? पद्मा अलङ्कार के विना ही राधाको देखकर ही लज्जिता हो जाती है, अतएव मणिमय मण्डन मण्डल-रचना प्रयास की आवश्यकता ही नही है । १५६

मुक्ताफलेषु छायायास्तरलत्वमिवान्तरा ।
प्रतिभाति यदङ्गेषु तल्लावण्यमिहोच्यते ॥१५७॥

यथा—

जगदमलरुचिर्विचित्य राधे, व्यधित विधिस्तव नूनमङ्गकानि ।
मणिमय-मुकुरं कुरङ्गनेत्रे, किरणगणेन विडम्बयन्ति यानि ॥१५८॥

अथ सौन्दर्य्यम्—

अङ्गप्रत्यङ्गकानां यः सन्निवेशो यथोचितम् ।
सुश्लिष्टः सन्धिबन्धः स्यात्तत् सौन्दर्य्यमितीर्य्यते ॥१५९॥

यथा— अखण्डेन्दोस्तुल्यं मुखमुरुकुचद्योतितमुरो
भुजौ स्रस्तावंसे करपरिमितं मध्यमभितः ।
परिस्फारा श्रोणी क्रमलघिमभागूरुयुगलं
तवापूर्वं राधे किमपि कमनीयं वपुरभूत् ॥१६०॥

अथ अभिरूपता—

यदात्मीयगुणोत्कर्षैर्वस्त्वन्यन्निकटस्थितम् ।
सारूप्यं नयति प्राज्ञैराभिरूप्यं तदुच्यते ॥१६१॥

लावण्य— मुक्ताफल समूह के मध्यदेश से निर्गत कान्ति की तरलता की भाँति (तरङ्गायमानता की भाँति) अङ्गप्रत्यङ्ग की अति स्वच्छता के कारण जो कान्ति तरङ्ग (चाकचिक्य चक्मकाहठ) होता है, उसको लावण्य कहते हैं। १५७

उदाहरण— हे राधे ! हे कुरङ्गनेत्रे ! विधिने निश्चय ही तुम्हारे अङ्ग प्रत्यङ्ग को जगत् की अमल रुचियों को एकत्र करके ही निर्माण किया है। अङ्गकिरणों से मणिमय-मुकुर को भी उपहास करता है। १५८

सौन्दर्य्य— अङ्ग प्रत्यङ्गों का यथोचित सन्निवेश एवं सुश्लिष्ट सन्धिबन्ध होनेपर सौन्दर्य्य कहा जाता है। १५९

उदाहरण— अखण्ड चन्द्रमाकी भाँति मुखमण्डल, निविड़ विपुल कुचद्वयके द्वारा वक्षःस्थल शोभित है, भुजद्वय नत अंसमें शोभित है, मध्यभाग मुष्टि परिमित है, श्रोणी अति विस्तृत है, ऊरुयुगल क्रम पूर्वक लघुता को प्राप्त हुये हैं, हे राधे ! तुम्हारे वपु अपूर्व कमनीय है।

अभिरूपता— जब स्वीय गुणोत्कर्ष द्वारा निकटस्थित अन्यवस्तु को निज सारूप्य को प्राप्त कराता है, तब अभिज्ञ व्यक्तिगण उसे आभि-

पद्धतिः

यथा— वक्षोजे तव चम्पकच्छविमवष्टम्भोरुकुम्भोपमे
राधे कोकनदश्रियं करतले सिन्दूरतः सुन्दरे।
द्रागिन्दिन्दिरबन्धुरेषु चिकुरेष्विन्दीवराभ्यां वह-
न्नेकः कैरवकोरको वितनुते पुष्पत्रयीविभ्रमम् ॥१६२॥

अथ माधुर्य्यम्—
रूपं किमप्यनिर्वाच्यं तनोर्माधुर्य्यमुच्यते ॥१६३॥

यथा— किमपि हृदयमभ्रश्यामलं धाम रुन्धे
दृशमहह विलुण्ठत्याङ्गिकी कापि मुद्रा।
चटुलयति कुलश्री-धर्मचर्य्यां वकारैः
सुमुखि नवविवर्त्तः कोऽप्यसौ माधुरीणाम् ॥१६४॥

अथ मार्दवम्—
मार्दवं कोमलस्यापि संस्पर्शासहतोच्यते।
उत्तमं मध्यमं प्रोक्तं कनिष्ठं चेति तत्त्रिधा ॥१६५॥

तत्र उत्तमम्—
अभिनव-नवमालिकामयं सा, शयनवरं निशि राधिकाधिशिश्ये।

(४)

रूप्य-अभिरूपता कहते हैं। १६१

उदाहरण— हे राधे! एक कैरव कोरक-(श्वेत पद्मकलिका) पुष्पत्रय का विभ्रम को विस्तार कररहा है, क्योंकि-निस्तल विपुल कुम्भ की भाँति वक्षोजद्वय चम्पक की कान्ति को प्रकाश कर रहे है, सिन्दूर से भी सुन्दर करतल कोकनद कान्ति को प्रकाश कररहा है। चिकुर इन्दीवर की शोभाको विस्तार कररहा है। १६२

माधुर्य्य— कुछही अनिर्वचनीय रूपको माधुर्य्य कहते हैं। १६३

उदाहरण— हे सखि! हे सुमुखि! देखो! श्रीकृष्ण की रूप माधुरी एक नव विवर्त्त को प्राप्त कररही है, हृदय तो अभ्रश्यामल कान्तिमें रूद्ध हो गया। नेत्र अङ्गशोभा को देख देख कर लोट लगाता रहता है, उनकी चेष्टा कुलश्रीकी धर्मचर्य्या को चञ्चल करदेती है। १६४

मार्दव-'मृदुता'— जो कोमल वस्तुका भी स्पर्श सहन नहीं करते है, उसको मार्दव कहा जाता है, यह-उत्तम, मध्यम, एवं कनिष्ठ भेद से तिन प्रकार होता है। १६५

उत्तम मार्दव— अभिनव सद्य प्रस्फुटित कुसुम दलसे ही

न कुसुमपटलं दरापि जग्लौ, तदनुभवात्तनुरेव सव्रणासीत्।।"१६६।।

(उ० नी० स्थायिभाव-प्रकरणम् ५९-६१, ७३, ९३-४, १०३, ११४)—

"स्याद्दृढ़ेयं रतिः प्रेमा प्रोद्यन् स्नेहः क्रमादयम् ।
स्यान्मानः प्रणयो रागोऽनुरागो भाव इत्यपि ।।१६७।।
वीजमिक्षुः स च रसः स गुड़ः खण्ड एव सः ।
स शर्करा सिता सा च सा यथा स्यात् सितोपला ।।१६८।।
अतः प्रेमविलासाः स्युर्भावाः स्नेहादयस्तु षट् ।
प्रायो व्यवह्नियन्तेऽमी प्रेमशब्देन सूरिभिः ।।१६९।।

अथ प्रौढ़प्रेमा—

प्रौढ़ः प्रेमा स यत्र स्याद्विश्लेषस्यासहिष्णुता ।।१७०।।

अथ मधुस्नेहः—

मदीयत्वातिशयभाक् प्रिये स्नेहो भवेन्मधु ।।१७१।।
स्वयं प्रकटमाधुर्य्यो नानारससमाहृतिः ।
मत्ततोष्मधरः स्नेहो मधुसाम्यान्मधूच्यते ।।१७२।।

श्रीभानुनन्दिनी की रात्रि कालीन शय्याकी रचना हुईथी, उस शय्या में राधिका शयन करने से कुसुम समूह की ईषत ग्लानि भी नही हुई, किन्तु कुसुम के संस्पर्श से श्रीराधिका के अङ्गमें व्रणोद्गम हुआ था ।

(उ० नी० स्थायिभाव-प्रकरण-५९-६१, -७३, ९३-४,१०३,११४)-

स्थायिभाव गाढ़ताको प्राप्तकर प्रेम नाम धारण करता है, एवं प्रेम, स्नेह, स्नेह-मान, मान-प्रणय, प्रणय-राग, राग-अनुराग, अनुराग-भाव, नामसे प्रकट होता हैं, जैसे वीजसे इक्षु, इक्षुसे रस, रससे गुड़, गुड़से खाँड़, खँण्डसे शर्करा-सिता-सितोपला होती है, वैसे ही प्रेमके विलास ही स्नेहादि षट् है। प्रायशः ये सभी प्रेम शब्दसे कहे जाते हैं। १६९

प्रौढ़ प्रेमा— जिस अवस्थामें प्रिय विश्लेष असहन होता है उसे प्रौढ़ प्रेम कहते हैं। १७०

मधु स्नेह— प्रियमें अतिशय मदीयता होने पर ही मधुस्नेह होता है। १७१

स्वयं प्रकट माधुर्य्य तो होता ही है, अनेक रसों की भी एकत्र स्थिति होती है, मत्तता एवं उष्णता मधुके समान होनेसे इसे मधु-स्नेह कहते हैं। १७२

अथ ललितमान:—

मधुस्नेहस्तु कौटिल्यं स्वातन्त्र्यहृदयङ्गमम् ।
विभ्रन्नर्मविशेषश्च ललितोऽयमुदीर्य्यते ॥१७३॥

अथ सख्यम्—

विस्रम्भः साध्वसोन्मुक्तः सख्यं स्ववशतामयः ॥"१७४॥

अथ माञ्जिष्ठराग. (उ० नी० स्थायिभाव-प्र० १३६, १४६, १५४, १५५)

"अहार्य्योऽनन्यसापेक्षो यः कान्त्या बर्द्धते सदा ।
भवेन्माञ्जिष्ठरागोऽसौ राधामाधवयोर्यथा ॥१७५॥

अथ अनुराग:—

सदानुभूतमपि यः कुर्य्यान्नवनवं प्रियम् ।
रागो भवन्नवनवः सोऽनुराग इतीर्य्यते ॥१७६॥

अथ भाव:—

अनुरागः स्वसंवेद्यदशां प्राप्य प्रकाशितः ।
यावदाश्रयवृत्तिश्चेद्भाव इत्यभिधीयते ॥१७७॥

यथा— राधाया भवतश्च चित्तजतुनी स्वेदैर्विलाप्य क्रमाद्
युञ्जन्नद्रिनिकुञ्जकुञ्जरपते ! निर्धूतभेदभ्रमम् ।

ललित मान— मधुस्नेह मनोरम स्वन्त्रतासे कौटिल्य को प्राप्त कर विशेष नर्म को उद्भावन करने से ललितमान होता है । १७३

अनन्तर सख्य— भयोन्मुक्त विश्रम्भ प्रेमवशतामय होनेपर सख्य होता है । १७४

माञ्जिष्ठराग: (उ० नी० स्थायिभाव-प्र० १३६,१४६-१५४,१५५)— जो अकृत्रिम एवं आदर की अपेक्षा नही करता एवं कान्तिसे अपनेको सदा वर्द्धित करता रहता है, वह राग माञ्जिष्ठ कहलाता है, राधा-माधव का राग माञ्जिष्ठराग है । १७५

अनुराग— प्रिय अनवरत अनुभूत होनेपरभी जो भाव प्रियको नवनव रूपसे अनुभव कराता है, वह राग नूतन नूतन होकर अनुराग नाम धारण कराता है । १७६

भाव— अनुराग स्वसंवेद्य दशा को प्राप्तकर यावद् आश्रयवृत्ति यदि होता तब उसे भाव कहते है । १७७

उदाहरण— राधा की एवं आपकी चित्तजतु की स्वेदद्वारा क्रमसे पिघलाकर एक करदियागया है, अर्थात् भेदभ्रम मिटादियागया

चित्राय स्वयमन्वरञ्जयदिह ब्रह्माण्डहर्म्योदरे
भूयोभिर्नवरागहिङ्गुलभरैः शृङ्गारकारुः कृती ॥"१७८॥

अथाधिरूढ़ः(उ० नी० स्थायिभाव-प्र० १७०,१७२,१७३,१७६,१७६,१८३

"रूढ़ोक्तेभ्योऽनुभावेभ्यः कामप्याप्ता विशिष्टताम् ।
यत्रानुभावा दृश्यन्ते सोऽधिरूढ़ो निगद्यते ॥१७६॥
मोदनो मादनश्चासावधिरूढ़ो द्विधोच्यते ॥१८०॥

तत्र मोदनः—

मोदनः स द्वयोर्यत्र सात्त्विकोद्दीप्तसौष्ठवम् ॥१८१॥
राधिकायूथ एवासौ मोदनो न तु सर्वतः ।
यः श्रीमान् ह्लादिनीशक्तेः सुविलास प्रियो वरः ॥ १८२ ॥
मोदनोऽयं प्रविश्लेषदशायां मोहनो भवेत् ।
यस्मिन् विरहवैवश्यात् सूद्दीप्ता एव सात्त्विकाः ॥ १८३ ॥
प्रायो वृन्दावनेश्वर्य्यां मोहनोऽयमुदञ्चति ।
सम्यग् विलक्षणं यस्य कार्य्यं सञ्चारिमोहतः ॥" १८४ ॥

अथ दिव्योन्मादः (उ० नी० स्थायिभाव-प्र० १६०-१६१,२१६-२२०)—

❀

है, हे निकुञ्जकुञ्जरपते ! शृङ्गार कारुकृतीने ब्रह्माण्ड हर्मोदरमें ब्रह्माण्ड रूप अट्टालिकाको रञ्जित करने के लिए पुनर्वार अनुरागरूप अतिशय रूपसे नवराग हिङ्गुल घोलकर रङ्ग का निम्मर्णि किया एवं उससे ब्रह्माण्ड रूपी प्रासाद के अन्दर और बाहर रंग रोगन किया ।

अधिरूढ़—(उ० नी० स्थायिभाव-प्र० १७०-१७२-१७३-१७६-१७६-१८३)— रूढ़ भाव में जो अनुभाव कहा गया है, उससेभी किसी विशेषरूप से अनुभावों की स्थिति दिखाई पड़ने से उक्त भाव को अधिरूढ़ कहते हैं। मोदन-मादन भेदसे अधिरूढ़ दोप्रकार होते हैं।१८०

मोदन— मोदन वह है जहाँपर दोंनों के ही सात्त्विक-उद्दीप्त सौष्टव होता है, केवल राधिका यूथ ही मोदन में आता है, और सव-नही आते। जो श्रीमान् ह्लादिनी शक्ति के सुविलास प्रिय बर हैं।१८२

मोदन ही विरह अवस्था में मोहन होता है, जहाँपर विरहविवशता के कारण सात्त्विकगण सूद्दीप्त होते हैं। १८३

वृन्दावनेश्वरी श्रीराधामें प्रायशः वह मोहन उदित होता है, सञ्चारि मोह से जिसका कार्यभी विलक्षण होता है। १८४

दिव्योन्माद—(उ० नी० स्थायिभाव-प्र० १६०-१६१-२१६-२२०)—

पद्धतिः

"एतस्य मोहनाख्यस्य गतिं कामप्युपेयुषः ।
भ्रमाभा कापि वैचित्री दिव्योन्माद इतीर्य्यते ॥ १८५ ॥
उद्घूर्णा चित्रजल्पाद्यास्तद्भेदा वहुधा मताः ॥ १८६ ॥

अथ मादनः—

सर्वभावोद्गमोल्लासी मादनोऽयं परात्परः ।
राजते ह्लादिनीसारो राधायामेव यः सदा ॥ १८७ ॥

यथा— आसृष्टे रक्षयिष्णुं हृदयविधुमणिद्रावणं वक्रिमाणं
पूर्णत्वेऽप्युद्वहन्तं निजरुचिघटया साध्वसं ध्वंसयन्तम् ।
तन्वानं शं प्रदोषे धृतनवनवता-सम्पदं मादनत्वा-
दद्वैतं नौमि राधादनुजविजयिनोरद्भुतं भावचन्द्रम् ॥" १८८
विना राधाप्रसादेन कृष्णप्राप्तिर्न जायते ।
अतः श्रीराधिका-कृष्णौ स्मरणीयौ सुसंयुतौ ॥ १८९ ॥

यथा भविष्योत्तरे—

"प्रेमभक्तौ यदि श्रद्धा मत्प्रसादं यदीच्छसि ।
तदा नारद ! भावेन राधाया राधको भव ॥" १९० ॥

उक्त मोहन किसी अवस्थापर पँहुचने पर ही भ्रमाभा कुछ भी वैचित्र्यी का उदय होता है । उसको ही दिव्योन्माद कहते है । १८५

उद्घूर्णा-चित्रजल्पा प्रभृति उसके अनेक भेद विद्यमान हैं । १८६

अनन्तर मादन— सर्वभावोद्गमोल्लासी परात्पर मादन है । ह्लादिनी का सार है, और वह सदा श्रीराधामें ही प्रकाशित होता है ।१८७

उदाहरण— राधाकृष्ण का अद्भूत अद्वैत भावचन्द्रको नमन करता हूँ । जो नित्य अक्षय हृदयरूप विधुमणि को द्रवित करता है, पूर्ण होने परभी वक्रता को प्राप्त करता है, निज कान्ति समूह द्वारा साध्वस को विध्वंस करता है, प्रदोष समय में नूतन नूतन शान्ति मङ्गल सम्पदको विस्तार करता है, मादन के कारण अद्वैत कक्षा में भावचन्द्र प्रवाहित होता है । १८८

राधा प्रसाद के विना कृष्णप्राप्ति नही होती है, अतः श्रीराधिका कृष्ण सुयुगलित रूपमें स्मरणीय है । १८९

भविष्य पुराणमें कथित है—

हे नारद ! प्रेमभक्तिमें यदि तुम्हारी श्रद्धा हो, और मेरी प्रसन्नता कोभी यदि चाहते हो तव भावद्वारा श्रीराधिका का आराधक वनो ।

तथा च नारदीये—

"सत्यं सत्यं पुनः सत्यमेव पुनः पुनः ।
विना राधाप्रसादेन मत्प्रसादो न विद्यते ।। १९१ ।।
श्रीराधिकायाः कारुण्यात्तत्सखीसङ्गितामियात् ।
तत्सखीनाञ्च कृपया योषिदङ्गमवाप्नुयात् ।।" इति ।।१९२।।

अथास्याः सखी—

आत्मनोऽप्यधिकं प्रेम कुर्वाणान्योन्यमुच्छलम् ।
विश्रम्भिणी वयोवेशादिभिस्तुल्या सखी मता ।। १९३ ।।

(उ० नी० राधा-प्र० ५०-५५)—

"तास्तु वृन्दावनेश्वर्य्याः सख्यः पञ्चविधा मताः ।
सख्यश्च नित्यसख्यश्च प्राणसख्यश्च काश्चन ।
प्रियसख्यश्च परमप्रेष्ठसख्यश्च विश्रुताः ।। २९४ ।।
सख्यः कुसुमिका-बिन्ध्या-धनिष्ठाद्याः प्रकीर्तिताः ।
नित्यसख्यस्तु कस्तूरी-मणिमञ्जरिकादयः ।। १९५ ।।
प्राणसख्यः शशिमुखी-वासन्ती-लासिकादयः ।
गता वृन्दावनेश्वर्य्याः प्रायेणेमाः स्वरूपताम् ।। १९६ ।।

नारदीय पुराणमें उक्त है–सत्य, सत्य, पुनः सत्य पुनः पुनः सत्य ही कहता हूँ। राधा की प्रसन्नता विना मेरी प्रसन्नता नही होती है। १९१

श्रीराधिका की करुणा से उनकी सखी सङ्गति होगी । उनकी सखीयों की कृपासे ही योषित् देह प्राप्त होगा। १९२

श्रीराधिका की सखी— श्रीराधिका के सखीगण परस्पर में अपना शरीर से भी अधिक प्रेम करती है, सवही विश्वस्ता हैं, और वयस, वेश आदियों में समान होने के कारण इनसब को सखी कही जाती है। १९३

(उ० नी० राधा-प्र० ५०–५५)— श्रीवृन्दावनेश्वरी की सखियाँ पाँच प्रकार होतीं हैं। सख्य, नित्यसख्य, प्राणसख्य, प्रियसख्य, परम-प्रेष्ठसख्य। १९४

※ सख्य—कुसुमिका-विन्ध्या-धनिष्ठा प्रभृति हैं।

※ नित्यसखी—कस्तुरी मणिमञ्जरिकादि हैं। १९५

※ प्राणसखी—शशिमुखी-वासन्ती-लासिकादि हैं, ये सव प्रायकर श्रीवृन्दावनेश्वरी के स्वरूपके समान स्वरूप हैं। १९६

पद्धति:

प्रियसख्य: कुरङ्गाक्षी सुमध्या मदनालसा ।
कमला माधुरी मञ्जुकेशी कन्दर्पसुन्दरी ।
माधवी मालती कामलता शशिकलादय: ॥ १९७ ॥
परमप्रेष्ठसख्यस्तु ललिता सविशाखिका ।
सुचित्रा चम्पकलता तुङ्गविद्येन्दुलेखिका ।
रङ्गदेवी सुदेवी चेत्यष्टौ सर्वगणाग्रिमा: ॥ १९८ ॥
आसां सुष्ठु द्वयोरेव प्रेम्ण: परमकाष्ठया ।
क्वचिज्जातु क्वचिज्जातु तदाधिक्यमिवेक्ष्यते ॥" १९९ ॥

(उ० नी० नायिकाभेद-प्र० १)—

"यूथेऽप्यवान्तरगणा;-स्तेषु च कश्चिद्गणस्त्रिचतुराभि: ।
इह पञ्चषाभिरन्य:, सप्ताष्टाभिस्तथेत्याद्या: ॥" २०० ॥

अथ सखीक्रिया: (उ० नी० सखी-प्र० ९७-९९, १२४-१२७, १३०)—

"मिथ: प्रेमगुणोत्कीर्तिस्तयोरासक्तिकारिता ।
अभिसारो द्वयोरेव सख्या: कृष्णे समर्पणम् ॥ २०१ ॥

❀

✻ प्रियसखी—कुरङ्गाक्षी-समध्या-मदनालसा । कमला, माधुरी, मञ्जुकेशी, कन्दर्पसुन्दरी । माधवी, मालती, कामलता, शशिकला प्रभृति हैं । १९७

✻ परमप्रेष्ठ सखी— ललिता, विशाखा, सुचित्रा, चम्पकलता, तुङ्गविद्या-इन्दुलेखिका, रङ्गदेवी-सुदेवी ये आठ सर्वगण की अग्रिमा हैं । १९८

इन सब की पराकाष्ठा प्राप्त प्रीति श्रीराधाकृष्ण-दोनों के प्रति समान रूपसे ही होने परभी कदाचित् राधाकृष्ण-एक एक के प्रति किसी किसी की अधिक प्रीति दिखाई देती है । १९९

(उ० नी० नायिकाभेद-प्र० १)—

सखियो के यूथमें अवान्तर अनेक-गण हैं, उसके मध्यमें वह गण तिन-चार-पाँच-सात-आठ व्यक्तियों को लेकर होता है, पूर्वोक्तमें भी यह क्रम जानना होगा । २००

(उ० नी० सखी-प्र०-९७-९९-१२४-१२७-१३०)—

सखी क्रिया— परस्पर श्रीराधाकृष्ण का गुणकीर्त्तन । उभयके प्रति उभयकी आसक्ति सम्पादन, उभयका अभिसार सम्पादन, कृष्णमें सखी को समर्पण । २०१

नर्माश्वासन-नेपथ्यं हृदयोद्घाटपाटवम् ।
छिद्रसंवृतिरेतस्याः पत्यादेः परिवञ्चना ॥ २०२ ॥
शिक्षा सङ्गमनं काले सेवनं व्यजनादिभिः ।
तयोर्द्वयोरुपालम्भः सन्देशप्रेषणं तथा ।
नायिकाप्राणसंरक्षाप्रयत्नाद्याः सखीक्रियाः ॥ २०३ ॥
अथासामपरः कोऽपि विशेषः पुनरुच्यते ।
असमञ्च समञ्चेति स्नेहं सख्यः स्वपक्षगाः ।
कृष्णे यूथाधिपायाञ्च वहन्त्यो द्विविधा मताः ॥ २०४ ॥

तत्र असमस्नेहाः—

अधिकं प्रियसख्यास्तु हरौ तस्यां ततस्तथा ।
वहन्त्यः स्नेहमसमस्नेहास्तु द्विविधा मताः ॥ २०५ ॥

तत्र हरौ स्नेहाधिकाः—

अहं हरेरिति स्वान्ते गूढ़ामभिमतिं गताः ।
अन्यत्र क्वाप्यनासक्त्या स्वेष्टां यूथेश्वरीं श्रिताः ॥ २०६ ॥

❀

नर्मवाणी, आश्वासन, नेपथ्य, मनकी वात कहने में पटुता, दोनों का छिद्र आच्छादन । पति आदि की परिवञ्चना । २०२

शिक्षा, मिलन सम्पादन समयमें, समयपर व्यजन आदि द्वारा परिचर्य्या, दोनों को उपालम्भदेना, दोनों का सन्देश प्रेरण । नायिका की प्राणरक्षा के लिए प्रयत्न आदि करना ही सखी का कार्य है । २०३

इनसव का कुछ विशेष है, उसकी पुनर्वार कहते हैं ।

स्वपक्ष गत सखियों का स्नेह असम तथा समभी होता है, यह स्नेह प्रकार कृष्णके प्रति एवं यूथाधिपके प्रति –उक्त भेदसे होता है, अतः सखीगण स्नेहके भेदसे दो प्रकार होते हैं । २०४

असमस्नेहा— कोई सखी श्रीहरिमें अधिक प्रीति करती है, और कोई तो श्रीभानुनन्दिनीमें–इस प्रकार असम स्नेहा सखी दो प्रकार होती है । २०५

श्रीहरि के प्रति स्नेहाधिका का उदाहरण—

मैं हरि का हूँ, इसप्रकार गूढ़ अभिमान अन्तःकरण में रहता है और अन्यत्र अनासक्ति से प्रीति करती है, एवं स्वेष्ट यूथेश्वरी को आश्रय करके रहती है । २०६

पद्धतिः

मनागेवाधिकं स्नेहं वहन्त्यस्तत्र माधवे ।
तद्दूत्यादिरताश्चेमा हरौ स्नेहाधिका मताः ।। २०७ ।।
याः पूर्वं सख्य इत्युक्तास्तास्तु स्नेहाधिका हरौ ।।" २०८ ।।

अथ प्रियसख्यां स्नेहाधिकाः(उ० नी० सखी-प्र० १३१,१३४,१३५,१३७)-

तदीयताभिमानिन्यो यः स्नेहं सर्वदाश्रिताः ।
सख्यामल्पाधिकं कृष्णात् सखीस्नेहाधिकास्तु ताः ।।२०९।।
याः पूर्वं प्राणसख्यश्च नित्यसख्यश्च कीर्त्तिताः ।
सखीस्नेहाधिका ज्ञेयास्ता एवात्र मनीषिभिः ।। २१० ।।

अथ समस्नेहाः—

कृष्णे स्वप्रियसख्याञ्च वहन्त्यः कमपि स्फुटम् ।
स्नेहमन्यूनताधिक्यं समस्नेहास्तु भूरिशः ।। २११ ।।
तुल्यप्रमाणकं प्रेम वहन्त्योऽपि द्वयोरिमाः ।
राधाया वयमित्युच्चैरभिमानमुपाश्रिताः ।।"इति।। २१२ ।।

तत्राद्या ललिता, यथा (श्रीराधाकृष्णगणोद्देश दीपिकायाम् ८०-८२)—

श्रीहरिके प्रति अधिक स्नेह के कारण उनके दूतकार्यका निर्वाह कर स्नेहाधिका होती है । २०७

पहले जो सखियों का वर्णन हुआ है, वे सबही हरिमें अधिक स्नेह रखने के कारण स्नेहाधिका है । २०८

अनन्तर प्रियसखी के प्रति स्नेहाधिका का उदाहरण—
(उ० नी० सखी० प्र० १३१-१३४, १३५, १३७)—

मैं राधिका की हूँ, इसप्रकार अभिमानी होकर सर्वदा कृष्ण से अधिक स्नेह प्रियसखी के प्रति करती है, वह सखी स्नेहाधिका कहलाती है । २०९

पहले प्राणसखी और नित्यसखी रूपसे जो भेद कहा गया है, मनीषीगण इन दोनों को ही सखीस्नेहाधिका मानते हैं । २१०

समस्नेहा— कृष्णके प्रति और प्रियसखी राधा के प्रति जो अन्यून -एवं अनधिक प्रीति करती हैं, वह समस्नेहा है, और संख्या में अत्यधिक हैं । २११

तुल्य प्रमाण प्रेम दोनों में रहने परभी ये सबही हमसब राधा की हैं, इस प्रकार अभिमानवती होती हैं । २१२

उसमें प्रथम ललिता-(श्रीराधाकृष्णगणोद्देश दीपिकामें)—८०,८२

"तत्राद्या ललितादेवी स्यादष्ठासु वरीयसी ।
प्रियसख्या भवेज्ज्येष्ठा सप्तविंशतिवासरैः ॥ २१३ ॥
अनुराधातया ख्याता वामा प्रखरतां गता ।
गोरोचनानिभाङ्गश्रीः शिखिपिञ्छनिभाम्बरा ॥ २१४ ॥
जाता मातरि सारद्यां पितुरेषा विशोकतः ।
पतिर्भैरवनामास्याः सखा गोवर्द्धनस्य यः ॥" २१५ ॥

(श्रीराधाकृष्णगणोद्देश-दीपिकायाम् १२६-१४०)—

"सर्वत्र ललितादेवी परमाध्यक्षतां गता ॥ २१६ ॥
स्वीकृताखिलभावेयं सन्धि-विग्रहिणी मता ।
अपराध्यति राधायै माधवे क्वापि दैवतः ॥ २१७ ॥
चण्डिमोद्दण्डितमुखी सखीदूतीभिरावृता ।
विग्रहे प्रौढ़िवादे च प्रतिवाक्योपपत्तिषु ॥ २१८ ॥
प्रतिभामुपलब्धाभिर्धत्ते विग्रहमाग्रहात् ।
आयाते सन्धिसमये तटस्थेव स्थिता स्वयम् ॥ २१९ ॥
भगवत्यादिभिर्द्वारैर्युक्तचा सन्धि करोत्यसौ ।
पौष्पाणां मण्डन-च्छत्र-शयनोल्लोच-वेश्मनाम् ॥ २२० ॥

(※)

सखीयों में प्रथमा ललिता देवी है, जो अष्ट सखियों से श्रेष्ठा है, प्रियसखी राधासे सप्तविंशति २७ दिनोंकी बड़ी है । २१३

अनुराधा नामसे उनकी प्रसिद्धि है, वामा प्रखरा स्वभाव वाली है, गोरचना के तुल्य अङ्गकान्ति, मयूरपुच्छ के समान वसन-वर्ण है । २१४

सारदी नाम्नी माता से विशोक नामक पितासे उत्पन्न हुई, पति भैरव है, जो गोवर्द्धन मल्लका सखा है । २१५

(श्रीराधाकृष्णगणोद्देश दीपिकामें १२६-१४०)—

सर्वत्र सवका परम अध्यक्ष श्रीललिता देवी है । २१६

ललिता सखी अखिल भावयुक्ता है, और सन्धि-विग्रह कार्य में निपुणा है, दैव वश माधव यदि श्रीराधा चरणमें अपराधी हो जाते हैं तो चण्ड उद्धण्डमुखी होकर सखी दूतीयों को लेकर लड़ाई में प्रौढ़िवाद में उत्तर प्रत्युत्तर में और युक्ति आदि प्रदर्शन में विशेष प्रतिभा के साथ आग्रहसे लड़ाई करती है, सन्धि के समय तटस्थ होकर रहती है । २१७-१८-१९

और पौर्णमासी देवी द्वारा सन्धि भी कराती है, पुष्पका मण्डन-

पद्धतिः

निर्मिताविन्द्रजालादेः प्रहेल्याश्चातिकोविदा ।
ताम्बूलेऽधिकृता याः स्युर्वयस्या दासिकाश्च याः ॥२२१॥
मदनोन्मादिनी-वाट्यां याः किन्नरकिशोरिकाः ।
प्रसूनवल्लि-ताम्बूलवल्ली-पूगद्रुमेषु च ॥२२२॥
सख्यश्च वनदेव्यश्च वरमाल्योपजीविनाम् ।
याः कन्यकाश्च सर्वासु तास्वेषाध्यक्षतां गता ॥२२३॥
रत्नप्रभादयोऽष्टौ याः प्रियसख्योऽनुकीर्त्तिताः ।
सर्वत्र ललितादेव्यास्ता ज्ञेयाः प्रत्यनन्तराः ॥२२४॥
रत्नप्रभा-रतिकले तत्राप्यष्टासु विश्रुते ।
गुण-सौन्दर्य्य-वैदग्धी-माधुरीभिरुपागते ॥२२५॥
वृन्दा-वृन्दारिका-मेला-मुरल्याद्यास्तु दूतिकाः ।
कुञ्जादिसंस्क्रियाभिज्ञा वृक्षायुर्वेदकोविदाः ॥२२६॥
वशीकृतस्थिरचरा द्वयोः स्नेहेन निर्भराः ।
गौराङ्गी चित्रवसना वृन्दा तासु वरीयसी ॥"२२७॥

❦

च्छत्र, शय्या एवं गृहसज्जा की यावतीय सामग्री २२०

निर्माण करती है, इन्द्रजाल रचना में एवं प्रहेली रचना में अति कोविदा है, ताम्बूल सेवा में विशेष अधिकार रखती है। इनके अधीन अनेक वयस्या और दासिका है। २२१

मदनोम्नादिनी वाटिका में जितनी किशोर किशोरी है, प्रसुन-वल्ली-ताम्बूलवल्ली-पूगद्रुम आदिके सखी-वनदेवी-उत्तम माला वनाने वाली जितनी कन्यका है, इन सवकी अध्यक्षता ललिता देवी करती है। २२२। २२३

रत्नप्रभा आदि अष्ट प्रियसखी है, ये सव ललिता देवीके अत्यन्त निकटवर्त्ती हैं। २२४

उन अष्ट प्रियसखी के मध्यमें रत्नप्रभा-रतिकलासर्वश्रेष्ठा है, गुण वैदग्धी सौन्दर्य्य माधुरीसे भी अनुरूप है। २२५

वृन्दा-वृन्दारिका, मेला, मुरलिका आदि दूतिका, कुञ्ज संस्कारा-भिज्ञा वृक्षायुर्वेद कोविदा है। २१६

जो स्नेह से स्थावर जङ्गम को भी वशीभुत किआ है, इन सवमें गौराङ्गी चित्रवसना वृन्दा ही वरीयसी है। २२७

अथ विशाखा (श्रीराधाकृष्णगणोद्देश-दीपिकायाम् ८३-८५)—

"विशाखात्र द्वितीया स्यादेकाचारगुणव्रता ।
प्रियसख्या जनिर्यत्र तत्रैवाभ्युदिता क्षणे ॥२२८॥
तारावलिदुकूलेयं विद्युन्निभतनुद्युतिः ।
पितुः पावनतो जाता मुखरायाः स्वसुः सुतात् ॥२२९॥
जटिलायाः स्वसुः पुत्र्यां दक्षिणायान्तु मातरि ।
भवेद्विवाहकर्त्तास्या वाहिको नाम वल्लवः ॥"२३० ॥

(कृ० ग० १४१-१४७)—

"विशाखा सर्वतोभद्रा प्रियनर्मसखी मता ।
अखण्ड-क्षीण-मन्त्रेयं गोविन्दे नर्मकर्मठा ॥ २३१ ॥
परिज्ञाताक्षहृदया बुद्धिदूत्यैककोविदा ।
साम्नि कान्दर्पिकोपाये दाने भेदे च पेशला ॥ २३२ ॥
पत्रभङ्गादिरचने माल्यपीड़ादिगुम्फने ।
विचित्र-सर्वतोभद्रमण्डलादि-विनिर्मितौ ॥ २३३ ॥
नानाविचित्रसूत्रेण सूचीवापक्रियासु च ।

अनन्तर विशाखा का परिचय-(श्रीराधाकृष्णगणोद्देश दीपिकामें ८३-८५)—अष्ट सखियों में विशाखा द्वितीया है, विशाखा एकनिष्ठ आचरण परायण एवं गुणव्रता है, प्रियसखि भानुनन्दिनी का आविर्भाव दिनमें उसक्षण में ही विशाखाका भी जन्म हुआ था। २२८

इनका तारावली वसन, विद्युत् के समान अङ्गकान्ति, पिता का नाम पावन माता का नाम दक्षिणा, मुखरा की भगिनी जटिला उनकी वहिन दक्षिणा रही, विशाखा का पति का नाम वाहिक गोप है।२३०

(कृ० ग० १४१-१४७)— विशाखा सर्वतोभद्र प्रियनर्म सखी है, यह विशाखा अखण्ड-अक्षीण बुद्धिशाली है, गोविन्द के नर्म कर्म में कुशला भी है। २३१

नेत्र और हृदय की गति की विशेष रूपसे जानती हैं, बुद्धिमें और दूत कार्यमें कोविदा है, साम, दान, भेद, के द्वारा कन्दर्प कर्म सम्पादन में सुचतुरा है। २३२

पत्र भङ्गादि रचन में और माल्य-आपीड़ आदि का गुम्फन में विचित्र सर्वतोभद्र मण्डल रचना में भी विशाखा निपुणा है।२३३

अनेक प्रकार सूत्रद्वारा सिलाई कार्य में भी निपुणा है। और

पद्धतिः

सूर्य्याराधनसामग्रीसाधने च विचक्षणा ॥ २३४ ॥
विचित्रदेशगीतेषु दक्षा ध्रुवपदादिषु ।
रङ्गावलिप्रभृतयो याः सख्यश्चित्रकोविदाः ॥ २३५ ॥
माधवी मालती गन्धलेखाद्या आलयस्तथा ।
याश्च वस्त्राधिकारिण्यः सख्यो दास्यश्च सम्मताः ॥२३६॥
यारण्यदेव्यधिकृता सर्वानन्दचमत्कृतौ ।
याश्च प्रसूनवृक्षेषु सख्योऽधिकृतिमाश्रिताः ।
मालिकाद्याश्च तास्वेषा सर्वास्वध्यक्षतां गता ॥"२३७॥

अथ चम्पकलता यथा (कृ० ग० ८६-८७)—

"तृतीया चम्पकलता फुल्लचम्पक-दीधितिः ।
एकेनाह्ला कनिष्ठेयं चासपक्षनिभाम्बरा ॥ २३८ ॥
पितुरारामतो जाता वाटिकायान्तु मातरि ।
वोढ़ा चण्डाक्षनामास्या विशाखा-सदृशी गुणैः ॥ २३९॥

(कृ० ग० १४८-१५२)—

"अभिज्ञा चम्पकलता दूत्यतन्त्र-प्रघट्टके ।
निगूढ़ारम्भसम्भारा वाचोयुक्तिविशारदा ॥ २४० ॥

सूर्याराधन सामग्री साधन में भी विचक्षणा है । २३४
विचित्र देश गीतों में ध्रुवपद आदि में दक्षा है। एवं अतिपाण्डित्य प्रवीणा रङ्गावलि प्रभृति जिनकी सखी है । २३५
माधवी मालती गन्धलेखा प्रभृति जिनकी आलि है। और वस्त्राधिकारी सखी और दासी भी इनकी अनुगता है। २३६
सर्बानन्द चमत्कृतिमें जो सव वनदेवी नियुक्ता है, प्रसून वृक्षों के लिए भी जिन सव की अधिकारी नियुक्त किया गया है, माली प्रभृति जितनी भी सेविकाएँ है, ये सवकी अध्यक्षता श्रीविशाखा जी करती हैं । २३७

अथ चम्पकलता—यथा (कृ० ग० ८६-८७)—फुल्लचम्पक के तुल्य कान्तियुक्ता चम्पकलता संख्या में तीसरी है, यह सखी एकदिन की छोटी है । चासपक्ष की भाँति वसन है । २३८
पिता का नाम आराम, एवं माता का नाम वाटिका है । चण्डक इनका पति है, और चम्पकलता विशाखा के समान ही गुणों में है ।२३९
(कृ० ग० १४८-१५२)— दूत्यक्रिया में चम्पकलता अभिज्ञा है,

उपायेन पटिम्ना च प्रतिपक्षापकर्षकृत् ।
फलप्रसून-कन्दानां सन्धानप्रक्रिया-विधौ ।। २४१ ।।
हस्तचातुर्य्यमात्रेण नानामृण्मय-निर्मितौ ।
षड़्रसानां परीक्षासु सूदशास्त्रे च कोविदा ।। २४२ ।।
सितोपलाकृतिपटुर्मिष्टहस्तेति विश्रुता ।
पौरगव्यस्य पचने याः सख्यो दासिकाश्च याः ।। २४३ ।।
कुरङ्गाक्षीप्रभृतयः सख्यो या अष्टसंख्यकाः ।
सकलेषु द्रुमलतागुल्मेष्वधिकृताश्च याः ।
सखीप्रभृतयस्तासु संप्राप्ताध्यक्षतामसौ ।।"२४४।।

अथ चित्रा यथा (कृ० ग० ८८-८९)—

"चित्रा चतुर्थी काश्मीरगौरी काचनिभाम्बरा ।
षड़्विंशत्या कनिष्ठाह्लां माधवामोद-मेदुरा ।। २४५ ।।
चतुराख्यात् पितुर्जाता सूर्य्यमित्रपितृव्यजात् ।
जनन्यां चर्च्चिकाख्यायां पतिरस्यास्तु पीठरः ।।"२४६ ।।

गोपनीय सेवासामग्री की सम्पादन कारिणी है, वाणी युक्ति में विशारद है । २४०

कुशल उपायों से प्रतिपक्षका अपकर्ष करदेती है। फल-प्रसून-कन्द आदि की अनुसन्धान प्रक्रिया विधिमें अति निपुणा है । २४१

नाना प्रकार मृन्मय वस्तु निर्म्माण में हस्त चातुर्य्यभी असमोर्द्ध है, षड़्रसकी परीक्षामें और पाकशास्त्रमें कोविदाभी है । २४२

सितोपला निर्म्माण में पटु है, और इनकी मिष्टहस्ता ख्याति है, अन्तःपुर में दुग्ध पाक में जितना सखी और दासीयां नियुक्ता रहती हैं, ये सव कुरङ्गाक्षी आदि अष्ट संख्यका सखी है, और द्रुम लता गुल्म में भी जितनी भी सखी प्रभृति नियुक्ता रहती है, इन सव की अध्यक्षता चम्पकलता करती हैं । २४३-२४४

अनन्तर-चित्रा-(कृ० ग० ८८-८९)—यह चित्रा संख्यामें चतुर्थी है, कुङ्कुम के समान गौरवर्णा काच के समान वस्त्र है, और २६ दिन की छोटी है, माधव के आमोद के लिए अन्तःकरण सदा स्निग्ध रहती है । २४५

चतुर इनका पिता है, और जननी चर्चिका है, पति इनका पीठर है । २४६

अथ क्रिया यथा तत्रैव (कृ० ग० १५३-१५८)—

"चित्रा विचित्रचातुर्य्या सर्वत्रासौ प्रवेशिनी ।
यानेऽभिसरणाभिख्ये षाड़्गुण्यस्य तृतीयके ॥ २४७ ॥
निखिलेङ्गित-विज्ञाने नानादेशीयभाषिते ।
दृष्टिमात्रात् परिचये मधुक्षीरादिवस्तुनः ॥ २४८ ॥
काचभाजननिर्माणे मन्त्रे निर्मोकिणां तथा ।
ज्योतिःशास्त्रे पशुव्रातचर्य्यायां कार्मणेऽपि च ॥ २४९ ॥
वृक्षोपचारशास्त्रे च विशेषात् पाटवं गता ।
रसानां पानकादीनां सुष्ठु निर्माणकर्मठा ॥ २५० ॥
अष्टौ रसालिकाद्याः स्युर्याः सख्यः परिकीर्तिताः ।
याश्च पेयाधिकारिण्यः सख्यो दास्यश्च सम्मताः ॥ २५१ ॥
दिव्यौषधीनां प्रायेण हीनानां कुसुमादिभिः ।
तथा वनस्थलीनाञ्च वीरुधाञ्चाधिकारिताम् ॥ २५२ ॥
लब्धाः सख्यादयो याश्च तत्रैषाध्यक्षतां गता ॥"२५३ ॥

अथ तुङ्गविद्या (कृ० ग० ९०-९१)—

"पञ्चमी तुङ्गविद्या स्याज्ज्यायसी पञ्चभिर्दिनैः ।

❁

इनकी क्रियाएँ—(कृ० ग० १५३-१५८)—चित्रा विचित्र चातुरी की है, यान, में अभिसार में आतिथ्य कर्म में भी निपुणा है, षाड़्गुण्य निर्वाह में पटु है । २४७

निखिल इङ्गित विज्ञानमें एवं नानादेशभाषा में निष्णात है, मधुक्षीर आदि वस्तु का दृष्टिमात्र मधुक्षीरादि वस्तु का पहिचान करलेती । २४८

काचपात्र निर्माण में और मन्त्रणा में भी निपुणा है। ज्योतिः शास्त्रमें पशु आदि की परिचर्य्या में निपुणा है । २४९

वृक्षोपचार शास्त्रमें विशेष अभिज्ञता है, पेय रस निर्म्माणमें अति कुशला है । २५०

आठ सखी और जो सखी पेय के अधिकारी है । २५१

सखी और दासीगण, दिव्योषधि, कुसुम, वनस्पति और बिरुध आदि का अधिकारी है, इन सवकी अध्यक्षता चित्रा सखी करती है । २५२-२५३

अनन्तर तुङ्गविद्या (कृ० ग० ९०-९१)—अष्ट सखियों में तुङ्गविद्या

चण्द्र-चन्दन-भूयिष्ठ-कुङ्कुम-द्युतिशालिनी ॥ २५४ ॥
पाण्डुमण्डनवस्त्रेयं दक्षिण-प्रखरोदिता ।
मेधायां पुष्कराज्जाता पतिरस्यास्तु वालिशः ॥"२५५ ॥

दक्षिणालक्षणं तत्रैव (उ० नी० सखी-प्र० ३८)—

"असहा माननिर्बन्धे नायके युक्तवादिनी ।
सामभिस्तेन भेद्या च दक्षिणा परिकीर्तिता ॥"२५६ ॥

क्रिया यथा तत्रैव (कृ० ग० १५९-२६३)—

"तुङ्गविद्या तु विद्यानामष्टादशतयं श्रिता ।
सन्धावतीव कुशला कृष्णविश्रम्भशालिनी ॥ २५७ ॥
रसशास्त्रे नये नाट्ये नाटकाख्यायिकादिषु ।
सर्वगान्धर्वविद्यायामाचार्य्यत्वमुपाश्रिता ॥ २५८ ॥
विशेषान्मार्गगीतादौ वीणायाश्चातिपण्डिता ।
मञ्जुमेधादयः सख्यो या अष्टौ परिकीर्तिताः ॥ २५९ ॥
या दूत्यः कुशलाः सन्धौ षाड़्गुण्यस्यादिमे गुणे ।
सङ्गीतरङ्गशालायां याः सख्योऽधिकृतिं गताः ॥ २६० ॥

❀

का स्थान पञ्चम है, तुङ्गविद्या पाँच दिनों की वड़ी है, चन्द्र-चन्दन-भूयिष्ठ-कुङ्कुम के समान कान्ति विशिष्ट है। २५४

पाण्डुवर्ण मण्डन एवं वसनयुक्त है, स्वभाव में दक्षिणा-प्रखरा रही, पिता का नाम पुष्कर और माता का नाम मेधा है, एवं पति का नाम वालिश है। २५५

दक्षिणा का लक्षण-(उ० नी० सखी-प्र० ३८)—मान निर्बन्ध में अरुचिशील नायक के प्रति युक्ति वादिनी साम नीति द्वारा ही जिनका समाधान संभव है, वह दक्षिणा नायिका कहलाती है। २५६

उनकी क्रिया—(कृ० ग० १५९-१६३)—तुङ्गविद्या अष्टादशविद्या में निपुणा है। सन्धिकार्य में अत्यन्त कुशला, श्रीकृष्ण जी की अति विश्वस्ता है। २५७

तुङ्गविद्या नीतिमें, नाट्य-नाटक-आख्यायिका प्रभृति में एवं निखिल गान्धर्व विद्या में आचार्य्यत्व प्राप्त किए हैं। २५८

विशेषकर मार्ग गीत आदिमें एवं वीणामें आप अतिशय पण्डिता है, मञ्जुमेधादि जो अष्ट सखी कही जाती है। २५९

जो सव दूती सन्धि कार्यमें एवं षाड़्गुण्यादि गुणमें प्रवीण है,

पद्धतिः

मार्दङ्गिक्यः कलावत्यो नर्त्तकीप्रमुखाश्च याः ।
वृन्दावनान्तरस्थेषु जनेष्वधिकृताश्च याः ।
सख्यश्च जलदेव्यश्च तत्रैवाध्यक्षतां गता ।।"इति ।। २६१ ।।

अथेन्दुलेखा (कृ० ग० ९२-९३)—

"इन्दुलेखा भवेत् षष्ठी हरितालोज्ज्वलद्युतिः ।
दाड़िम्बपुष्पवसना कनिष्ठा वासरैस्त्रिभिः ।। २६२ ।।
वेला-सागरसंज्ञाभ्यां पितृभ्यां जनिमीयुषी ।
वामप्रखरतां याता पतिरस्यास्तु दुर्वलः ।।"२६३ ।।

अथ क्रिया तत्रैव (कृ० ग० १६४-१६६)—

"इन्दुलेखा भवेन्सल्लागमतन्त्रोक्तमन्त्रके ।
विज्ञातवश्यमन्त्रेयं सामुद्रकविशेषवित् ।। २६४ ।।
हारादिगुम्फवैचित्र्ये दन्तरञ्जनकर्मणि ।
सर्वरत्नपरीक्षायां पट्टडोरादि-गुम्फने ।। २६५ ।।
लेखे सौभाग्ययन्त्रस्य कोविदा यद्भुजे धृतम् ।

(६)

सङ्गीत एवं रङ्गशालामें जो जो सखी अधिकारी है, इन सव की अध्यक्षा तुङ्गविद्या है । २६०

कलावती मार्दङ्गिकी प्रमुख जितनी नर्त्तकी है, वृन्दावनवासी जन के प्रति जिनका अधिकार है, जितनी सखियां एवं जलदेवियां हैं' उन सव की अध्यक्षा तुङ्गविद्या है । २६१

अनन्तर इन्दुलेखा (कृ० ग० ९२-९३)—अष्ट सखियों में इन्दुलेखा षष्ठ सखी है, इनकी अङ्गकान्ति हरिताल के समान उज्ज्वल है। दाड़िम्ब पुष्पवर्ण के समान वस्त्र का वर्ण है, श्रीराधासे तिन दिन की कनिष्ठा है । २६२

माता का नाम वेला, और पिता का नाम सागर है, स्वभावमें वामप्रखरा है, इनका पति का नाम दुर्वल है । २६३

उनकी क्रिया—(कृ० ग० १६४-१६६)—इन्दुलेखा आगम एवं तन्त्रोक्त मन्त्र की विशेषज्ञाता है, वशीकरण मन्त्र एवं सामुद्रिक शास्त्रमें विशेष अधिकार रखती हैं । २६४

हारादि गुम्फन वैचित्र्यमें दन्त रञ्जन कर्म में सर्वरत्न परीक्षामें पट्ट डोरादि का–गुम्फन में सौभाग्य यन्त्र लिखन में पण्डिता है, इनके लिखित सौभाग्य यन्त्रको वाहुमें धारण करने से परस्पर में अनुराग तो

अन्योन्यरागमुत्पाद्य सौभाग्यं जनयेद्वरम् ॥ २६६ ॥
तुङ्गभद्रादयस्त्वस्याः सख्यः स्युः प्रत्यनन्तराः ।
यास्तु साधारणा दूत्यो द्वयोः पालिन्धिकादयः ॥ २६७ ॥
तासां रहस्यवार्त्तानामियं भाजनतां गता ।
अलङ्कारे च वेशे च कोषरक्षाविधौ च याः ॥ २६८ ॥
सख्यो दास्योऽप्यधिकृता याश्च वृन्दावनान्तरे ।
स्थलेष्वधिकृता देव्यस्तास्वध्यक्षतया स्थिता ॥" इति।२६९॥

अथ रङ्गदेवी यथा (कृ० ग० ९४-९५)—

"सप्तमी रङ्गदेवीयं पद्मकिञ्जल्ककान्तिभा ।
जवारागिदुकूलेयं कनिष्ठा सप्तभिर्दिनैः ॥ २७० ॥
प्रायेण चम्पकलतासदृशी गुणतो मता ।
करुणा-रङ्गसाराभ्यां पितृभ्यां जनिमीयुषी ।
अस्या वक्रेक्षणो भर्त्ता कनीयान् भैरवस्य यः ॥" २७१ ॥

अथ क्रिया यथा तत्रैव (कृ० ग० १७०-१७४)—

(ॐ)

उत्पन्न होताही है, श्रेष्ठ सौभाग्य काभी अधिकारी होता है। २६५-२६६

तुङ्गभद्रा प्रभृति इनकी सखीगोष्ठी में है, दोनों की साधारण दूती पालिन्धिका प्रभृति है, उनसवकी रहस्य वार्त्ता का संयोजक इन्दुलेखा है। २६७

अलङ्कार निर्म्माण, वेश रचना, कोषरक्षा आदि कार्य में जो जो सखी और दासी है ये सव इनके अधीन रहती है, एवं वृन्दावन के स्थलभाग में जोभी देवी अधिकारी है, उन सवकी अध्यक्षा इन्दुलेखा है। २६८-२६९

अथ रङ्गदेवी-(कृ० ग० ९४-९५)—अष्ट सखियों में सप्तमी रङ्गदेवी है, इनकी अङ्गकान्ति पद्मकिञ्जल्क के समान है, जवाकुसुम के समान रक्तवर्ण वस्त्र है, और श्रीराधासे सातदिन की कनिष्ठा है, प्रायकर चम्पकलता की सदृशी इनकी गुणावली हैं, माता का नाम करुणा, और पिता का नाम रङ्गसार है, पतिका नाम वक्रेक्षण, जो भैरव का कनिष्ठ भाई है। २७०-२७१

अथ क्रिया (कृ० ग० १७०-१७४)—

"रङ्गदेवी सदोत्तुङ्गहास्यरङ्गतरङ्गिणी ।
कृष्णाग्रेऽपि प्रियसखी-नर्मकौतूहलोत्सुका ॥ २७२ ॥
षाड्गुण्यस्य गुणे तुर्य्ये युक्तिवैशिष्टचमाश्रिता ।
कृष्णस्याकर्षणं मन्त्रं तपसा पूर्वमीयुषी ॥ २७३ ॥
विचित्रेष्वङ्गरागेषु गन्धयुक्तिविधौ च याः ।
कलकण्ठीप्रभृतयः सख्योऽष्टौ याः प्रकीर्तिताः ॥ २७४ ॥
सख्यो दास्योऽप्यधिकृता याश्च धूपन-कर्मणि ।
शिशिरेऽङ्गारधारिण्यस्तपर्त्तावपि वीजने ॥ २७५ ॥
आरण्यकेषु पशुषु च्छेकेशु च मृगादिषु ।
सखीप्रभृतयो याश्च तत्रैषाध्यक्षतां गता ॥" इति॥ २७६ ॥

अथ सुदेवी यथा (कृ० ग० ९६)—

"सुदेवी रङ्गदेव्यास्तु यमजा मृदुरष्टमी ।
रूपादिभिः स्वसुः साम्यात्तद्भ्रान्तिभरकारिणी ।
भ्रात्रा वक्रेक्षणस्येयं परिणीता कनीयसा ॥" २७७ ॥

क्रिया यथा तत्रैव (कृ० ग० १७५-१८०)—

रङ्गदेवी सदा उत्तुङ्ग हास्यरङ्ग तरङ्गिनी है, श्रीकृष्ण के समक्षमें भी प्रियसखी–नर्म कौतूहल उत्सवका होती है। २७२

षाड्गुण्य के गुणमें अतुलनीय है, विशेषकर भेदनीति में युक्ति-वैशिष्ठ्य परायण है, तपस्याद्वारा कृष्ण का आकर्षण मन्त्र पहले ही इन्होंने प्राप्त किया है। २७३

विचित्र अङ्गरागमें, और गन्ध सम्पादन कार्यमें कलकण्ठी प्रभृति जो अष्ट सखी है। २७४

सखी और जोभी दासीगण अधिकारी है, धूपदान कर्ममें, शीत-कालीन अङ्गार कर्ममें, ग्रीष्म ऋतुमें वीजन कर्ममें आरण्यक पशु-पालन कर्ममें सेचन कार्यमें एवं मृगादि रक्षणमें जो सखी प्रभृति नियुक्त है, उनसव की अध्यक्षा रङ्गदेवी है। २७५-२७६

सुदेवी–(कृ० ग० ९६)—सुदेवी और रङ्गदेवी यमजा है, वह अष्ट सखीमें अष्ट संख्या की है। अधिक रूपसे रूप आदि में वहिन रङ्गदेवी के समान है, समय समय पर साम्य होने के कारण भ्रान्ति उत्पन्न होती है। वक्रेक्षण के कनिष्ट भाईने इनका पाणिग्रहण किया था। २७७

इसकी कार्य्यावली (कृ० ग० १७५-१८०)—सुदेवी प्रियसखी का

"सुदेवी केशसंस्कारं प्रियसख्यास्तथाञ्जनम् ।
अङ्गसम्बाहनं चास्याः कुर्वती पार्श्वगा सदा ॥ २७८ ॥
शारिका-शुकशिक्षायां लावकुक्कुटयोधने ।
भूरिशाकुनशास्त्रे च खगादिरुतवोधने ॥ २७९ ॥
चन्द्रोदयाभ्रपुष्पादि-वह्निविद्याविधावपि ।
उद्वर्त्तन-विशेषे च सुष्ठु कौशलमागता ॥ २८० ॥
गण्डूषक्षेपपात्रेषु गेण्डुके शयनेऽपि च ।
याः कावेरीमुखाः सख्योऽस्यास्ताः प्रत्यनन्तराः ॥ २८१ ॥
आसनस्याधिकारे याः सख्यो दास्यश्च सम्मताः ।
प्रतिपक्षादिभावानां या ज्ञानाय चरन्ति च ॥ २८२ ॥
धूर्त्ताः प्रणिधिरूपेण नानावेशधराः स्त्रियः ।
याश्च पक्षिषु वन्येषु च्छेकेष्वधिकृतास्तथा ।
सख्यश्च वनदेव्यश्च तत्रैषाध्यक्षतां गता ॥" इति॥ २८३ ॥

अथ वरो यथा श्रीकृष्णगणोद्देशदीपिकायाम् (९७-१२२)—

"एतदष्टक-कल्पाभिरष्टाभिः कथितो बरः ।
एता द्वादशवर्षीयाश्चलद्वाल्याः कलावती ॥ २८४ ॥

(॰)

केश संस्कार नेत्रोंमें अञ्जन प्रदान, अङ्ग सम्बाहन प्रभृति सेवामें सदा रत रहती है, और सर्वदा समीप में ही रहती है । २७८

शुक-शारिका के शिक्षण कार्य में लाव-कुक्कुट को लड़ाने में अतिशय शाकुन शास्त्रमें पक्षी की वोली समझने में । २७९

चन्द्रोदय अभ्र-पुष्पादि वह्निविद्या प्रभृति में एवं उपटन कार्य में उत्तम निपुणा है । २८०

गण्डुष क्षेपण पात्र के लिए गेण्डुक में शयन कार्य में कावेरी प्रमुख जोभी सखियां है, ये सव इनके अधीन है । २८१

आसन को अधिकार में जो सखी और दासी नियुक्ता है, और जो प्रतिक्षण की गति विधि को जानने के लिए नियुक्ता है । २८२

वहुरूपी जोभी धूर्त्ता स्त्री है, और वाथ पक्षियों के लालन पालन नियुक्ता है, एवं सेचन कार्य में सखी और वनदेवी अधिकारी है, इस सवकी अध्यक्षता सुदेवी करती है । २८३

अनन्तर "बर" आवरण परिकर (श्रीकृष्णगणोद्देश दीपिका में—(९७-१२२)—पूर्वोक्त अष्ट सखियों के अनुरूप ही आवरण परिकर भी

पद्धतिः

शुभाङ्गदा हिरण्याङ्गी रत्नरेखा शिखावती।
कन्दर्पमञ्जरी फुल्लकलिकानङ्गमञ्जरी॥ २८५॥

तत्र कलावती—

मातुलो योऽर्कमित्रस्य गोपो नाम्ना कलाङ्कुरः।
कलावती सुता तस्य सिन्धुमत्यामजायत॥ २८६॥
हरिचन्दनवर्णेयं कीरद्युतिपटावृता।
कपोतः पतिरेतस्या वाहिकस्यानुजस्तु यः॥ २८७॥

शुभाङ्गदा—

शुभाङ्गदा तड़िद्वर्णा विशाखायाः कनीयसी।
पीठरस्यानुजेनेयं परिणीता पतत्रिणा॥ २८८॥

हिरण्याङ्गी—

हिरण्याङ्गी हिरण्याभा हरिणीगर्भसम्भवा।
सर्वसौन्दर्य्यसन्दोह-मन्दिरीभूतविग्रहा॥ २८९॥
यज्वा यशस्वी धर्मात्मा गोपो नाम्ना महावसुः।
स मित्रं रविमित्रस्य विचित्रगुणभूषितः॥ २९०॥

❀

हैं। ये सब द्वादश वर्षीया है, और वाल्य कोभी अतिक्रम करचूकी हैं। २८४

येसव कलावती, शुभाङ्गदा, हिरण्याङ्गी, रत्नरेखा, शिखावती, कन्दर्प-मञ्जरी, फुल्लकलिका, अनङ्ग-मञ्जरी नाम के हैं। २८५

उनमें से कलावती=अर्कमित्र का मामा कलाङ्कुर गोप इनका पिता है और माता का नाम सिन्धुमती है। २८६

इनकी अङ्गद्युति हरिचन्दन वर्णा है, और वसन का वर्ण शुक पक्षी वर्ण के भाँति है, इनका पतिका नाम कपोत है, और वह वाहिक गोप का अनुज है। २८७

शुभाङ्गदा—शुभाङ्गदा तड़ित् वर्णा है. और विशाखा की छोटी वहिन है, पीठर गोप का अनुज पतत्रि के साथ इनकाविवाह हुआ। २८८

हिरण्याङ्गी-हिरण्य के समान कान्तियुक्ता है, और हरिणी से उत्पन्ना हुई है, निखिल सौन्दर्य समूह के मन्दिर रूप इनका श्रीअङ्ग है। २८९

रवि मित्रका मित्र यज्वा यशस्वी धर्मात्मा विचित्र गुण भूषित महावसु नामक गोप की एक वीर पुत्र और अतिमनोहरा कन्या प्राप्त

अभिलष्य सुतं वीरं कन्याञ्चातिमनोहराम् ।
इष्टं भागुरिणारेभे नियतात्मा पुरोधसा ॥ २९१ ॥
ततः सुधामयः कोऽपि सुचारुश्चरुरुत्थितः ।
नन्दितस्तं सुचन्द्रायै सधर्मिण्यै स दत्तवान् ॥ २९२ ॥
तमश्नन्त्यां चरुं तस्यामलिन्दे विभ्रमोज्झिता ।
सुरङ्गाख्या व्रजचरी कुरङ्गी रङ्गिणीप्रसूः ॥ २९३ ॥
आगत्य तरसा तस्या लोला किञ्चिदभक्षयत् ।
पशुपाली-हिरण्यौ ते ततो गर्भमवापतुः ॥ २९४ ॥
सुचन्द्रा सुषुवे पुत्रं स्तोककृष्णं ब्रुवन्ति यम् ।
असोष्ट गोष्ठमध्ये सा हिरण्याङ्गीं सुरङ्गिका ॥ २९५ ॥
या सखी प्रियगान्धर्वा गान्धर्व्वायाः प्रिया सदा ।
फुल्लापराजितराजि-विराजत्पटमण्डिता ॥ २९६ ॥
एतां दारतयोदारां ददौ वृद्धाय गोदुहे ।
जरद्गवाय गर्गस्य गिरा गौरवतो गुरोः ॥ २९७ ॥

रत्नरेखा—

सुतो मातृष्वसुः सूर्य्यसाह्वयस्य पयोनिधिः ।

करने की इच्छा हुई, और नियतात्मा पुरोहित भागुरि मुनिसे पुत्रेष्टि करवाया । २९०-२९१

यज्ञ से सुखमय अपूर्व चरु उत्थित हुआ । हर्ष से उन्होंनें अपनी पत्नी सुचन्द्रा को प्रदान किया । २९२

चरु भक्षण करते समय सुचन्द्राने अनवधानता के कारण चरु अङ्गनमें गिराया, उस समय कुरङ्गी रङ्गिनी की माता सुरङ्गा नामक हरिणी जल्दी आकर उस चरु का कुछ अंश खाया, इससे गोपी और हरिणी दोनों ही गर्भवती हो गयी । २९३-२९४

सुचन्द्राने स्तोककृष्ण नामक पुत्र को प्रसव किया, और सुरङ्गिका गोष्ठ में हिरण्याङ्गी को प्रसव किया यह गान्धर्वा की प्रियसखी वनी और सदा गान्धर्विका का फुल्ल अपराजिता वर्ण के वसन द्वारा शोभिता रही । २९५-२९६

गुरु गर्ग जी के आदेश से सर्वाङ्ग सुन्दरी कन्या का एक परम उदार वृद्ध जरद्गव नाम गोप के साथ परिणय कराया गया । २९७

रत्नरेखा—मातृस्वसु 'मौसी' सूर्य नामक का पुत्र पयोनिधि था

पद्धतिः

तस्य पुत्रवतः पत्नी मित्रा कन्याभिलाषिणी ॥ २९८॥
श्रद्धयाराधयाञ्चक्रे भास्करं सुतवस्करा।
प्रसादेन द्युरत्नस्य रत्नलेखामसूत सा ॥ २९९ ॥
मनःशिलारुचिरसौ रोलम्बरुचिराम्बरा।
वृषभानुसुताप्रेष्ठा भानुशुश्रूषणे रता ॥ ३०० ॥
व्यूढ़ा वाल्ये कड़ारेण माता यस्य कुठारिका।
घूर्णयन्ती दृशौ घोरे माधवं प्रेक्ष्य गर्जति ॥ ३०१ ॥

शिखावती—धेनुधन्यादभूद्धन्यां सुशिखायां शिखावती।
कर्णिकाराद्युतिः कुन्दलतिकायाः कनीयसी ॥ ३०२ ॥
जरत्तित्तिरिकिर्मीरपटा मूर्त्तेव माधुरी।
उदूढ़ा गरुड़ेनेयं गड्डुराख्येन गोदुहा ॥ ३०३ ॥

कन्दर्पमञ्जरी—
कन्दर्पमञ्जरी नाम जाता पुष्पाकरात् पितुः।
जनन्यां कुरुविन्दायां यस्याः पित्रा हरिं वरम् ॥ ३०४ ॥

उसकी पत्नी मित्रा कन्याभिलाषिणी हुई। २९८

उन्होंने श्रद्धासे भास्कर की आराधना की, सूर्य्य के प्रसाद से रत्नलेखा नामक कन्या उत्पन्न हुई। २९९

उस कन्या की देहकान्ति मनःशिला की रुचिके समान रही, परिधेय वसन मधुप के वर्ण का था, ये वृषभानु सुताकी अतिशय प्रेष्ठा रही, और भानुशुश्रूषण में रता रही। ३००

वाल्यावस्था में कड़ार नामक गोपके साथ इनका विवाह हुआथा, कड़ार की माता कुआरिका रही, जो घोर घूर्णायमान नेत्रों से माधव को देखती थी और गर्ज्जन भी करती थी। ३०१

शिखावती—सौभाग्यवती सुशिखा से शिखावती उत्पन्न हुई, यह कुन्दलता की कनिष्ठा भगिनी है, और कर्णिकार कुसुम के समान इनकी अङ्गकान्ति है। तित्तिरी पक्षी के समान वसन का वर्ण है, माधुरी की साक्षात् मूर्त्ति स्वरूपा रही, गड्डुर नामक गोप के साथ इनका विवाह कार्य सम्पन्न हुआ था। ३०२-३०३

कन्दर्प मञ्जरी—पिताका नाम पुष्पकरा एवं माता का नाम कुरुविन्दा, कन्दर्प से भी अत्युज्ज्वल इनकी अङ्गकान्ति थी, एवं अति उज्ज्वल वस्त्रावृता थी, इनका जनक पुष्पाकरने हृदयमें श्रीहरि को ही

हृदि कृत्वा न कुत्रापि विवाहोऽत्र न कार्य्यते ।
किङ्किरातोज्ज्वलरुचिर्विचित्रसिचयावृता ।। ३०५ ।।

फुल्लकलिका

श्रीमल्लात् फुल्लकलिका कमलिन्यामभूत् पितुः ।
सेयमिन्दीवरश्यामा शक्रचापनिभाम्बरा ।। ३०६ ।।
सहजेनान्विता पीततिलकेनालिकस्थले ।
विदुरोऽस्याः पतिर्दूरान्महिषीराह्वयत्यसौ ।। ३०७ ।।

अनङ्गमञ्जरी—

वसन्तकेतकीकान्तिर्मञ्जुलानङ्गमञ्जरी ।
यथार्थाक्षरनामेयमिन्दीवरनिभाम्बरा ।। ३०८ ।।
दुर्मदो मदवानस्याः पतिर्यो देवरः स्वसुः ।
प्रियासौ ललितादेव्या विशाखाया विशेषतः ।।"इति।३०९।।

अथ परिचारिकाः—

लवङ्गमञ्जरी रूपमञ्जरी रतिमञ्जरी ।
गुणमञ्जरिका श्रेष्ठा रसमञ्जरिका वरा ।। ३१० ।।
मञ्जुलाली मञ्जरी च विलासमञ्जरी तथा ।
कस्तूरीमञ्जरिकाद्या राधायाः परिचारिकाः ।। ३११ ।।

कन्याका वर निर्णय किया था, अतः अपरजन के साथ विवाह इनका नहीं हुआ । ३०४-३०५

फुल्लकलिका—पिता श्रीमल्ल, माता कमलिनी से फुल्लकलिका उत्पन्न हुई, इन्दीवर के समान श्यामवर्णा इन्द्रधनुष के समान वसना थी, पीत वर्णतिलक से ललाट देश स्वाभाविक शोभित होताथा; इनका पति का नाम विदुर था, जो दूरसे ही पत्नी को बुलाता था । ३०६-३०७

अनङ्ग मञ्जरी—वसन्त केतकी के समान अङ्गकान्तियुक्ता अतिमनोहर अनङ्ग मञ्जरी है, नामाक्षर के साथ अर्थका सम्बलन इनमें यथार्थ रूपसे था, इनका वसन इन्दीवर के समान था । ३०८

दुर्मद नामक गोप जो अत्यन्त मदवान् था, इनका पति है, यह व्यक्ति वहिन् का देवर भी था, अनङ्गमञ्जरी ललिता देवी की प्रियातो रही ही, विशेषकर विशाखा की भी प्रिया थी । ३०९

अथ परिचारिका—लवङ्गमञ्जरी, रूपमञ्जरी, रतिमञ्जरी, गुणमञ्जरी, रसमञ्जरिका, ये दोनों श्रेष्ठा है । ३१०

पद्धतिः

तत्र लवङ्गमञ्जरी श्रील-ध्यानचन्द्रगोस्वामिपादैर्विरचित-पद्धत्यां यथा—

अथ श्रीरूपमञ्जरी—

अथ श्रीमञ्जुलालीमञ्जरी—

लीलानन्दप्रदो नाम्ना विशाखाकुञ्जकोत्तरे।
तत्रैव तिष्ठति मुदा श्रीमञ्जुलालीमञ्जरी ॥ ३१२ ॥
रूपमञ्जरिकासख्यप्रायेण गुणसम्पदा।
किंशुकपुष्पवस्त्राढ्या तप्तहेमतनुच्छविः ॥ ३१३ ॥
लीलामञ्जरी नाम्नास्या वाममध्यात्वमाश्रिता।
श्रीराधिकामनोऽभिज्ञा वस्त्रसेवापरायणा ॥ ३१४ ॥
वयः सप्ताहयुक्तासौ सार्द्धत्रिदशहायना। (१३।६।७)
कलौ गौररसे लोकनाथगोस्वामितां गता ॥ ३१५ ॥

अथ श्रीविलासमञ्जरी—

नैर्ऋते श्रीरङ्गदेवीकुञ्जात् कुञ्जोऽस्ति पश्चिमे।

कस्तुरी मञ्जरीका आदि श्रीराधा की परिचारिका है। ३११

लवङ्गमञ्जरी का विवरण श्रीध्यानचन्द्र गोस्वामि पाद विरचित पद्धति में है।

रूपमञ्जरी-रतिमञ्जरी-गुणमञ्जरी-रसमञ्जरीयों का परिचय कुञ्ज आदि विशेषरूपसे श्रीगोपालगुरु गोस्वामिकृत पद्धतिमें वर्णित हैं।

अथ रूपमञ्जरी—

अथ श्रीमञ्जुलाली मञ्जरी—विशाखा का कुञ्ज के उत्तर भाग में लीलानन्द प्रद एक कुञ्ज है, मञ्जुलालीमञ्जरी वहाँपर निवास करती है।३१२

गुण सम्पद से प्राय समान होनें के कारण रूपमञ्जरी के साथ इनका सख्य है, तप्त हेम के समान तनुद्युति है, और वसन किंशुक पुष्प के समान है। ३१३

ये लीला मञ्जरी नाम से ख्यात है, और स्वभाव में वाममध्या है, श्रीराधिका की मनोऽभिज्ञा वस्त्रसेवा परायणा है। ३१४

वयस १३।६।७ १३ वर्ष-६ मास-७ दिन है। कलि में गौररस निमग्न होकर लोकनाथ गोस्वामी हुए। २१५

श्रीविलास मञ्जरी—श्रीरङ्गदेवी कुञ्जके नैर्ऋत कोण में पश्चिम

विलासानन्ददो नाम्नात्रास्ते विलासमञ्जरी ॥ ३१६ ॥
विलासमञ्जरी रूपमञ्जरीसख्यमाश्रिता ।
स्वकान्त्या सदृशीं चक्रे या दिव्यां स्वर्णकेतकीम् ॥ ३१७ ॥
चञ्चरीकदुकूलेयं वामा मृद्वीत्वमाश्रिता ।
नागजाञ्जन-सेवाढ्या मणिमण्डनमण्डिता ॥ ३१८ ॥
कनिष्ठा रसमञ्जर्य्याश्चतुर्भिर्दिवसैरियम् ।
जीवगोस्वामितां प्राप्ता कलौ गौररसे त्वसौ ॥ ३१९ ॥

अथ श्रीकस्तूरीमञ्जरी—

कस्तूर्य्यानन्ददो नाम्ना सुदेव्याः कुञ्जकोत्तरे ।
तत्रैव तिष्ठति मुदा सदा कस्तूरीमञ्जरी ॥ ३२० ॥
काचतुल्याम्बरा चासौ शुद्धहेमाङ्गकान्तिभाक् ।
मणीन्द्रमण्डनैर्युक्ता श्रीखण्डसेवनोत्सुका ॥ ३२१ ॥
वयस्त्रिदशवर्षासौ वामा मृद्वीत्वमाश्रिता ।
श्रीकृष्णकविराजाख्यां प्राप्ता गौररसे कलौ ॥ इति।३२२॥

ॐ

भाग में विलासानन्दद कुञ्ज है, उसमें विलास मञ्जरी निवास करती है । ३१६

विलासमञ्जरी रूपमञ्जरी के साथ सख्यबद्ध है । अपनी कान्ति से दिव्य स्वर्णकेतकी के समान दिखाई पड़ती है । ३१७

चञ्जरीक वसन, वामा मृदु स्वभाव है, केसर-अञ्जन आदि सेवा रता है, और मणि मण्डन से मण्डिता है, रस मञ्जरिसे चारदिन की छोटी है कलिमें गौर रसमें जीव गोस्वामी हुए है । ३१८-३१९

अथ श्रीकस्तुरी मञ्जरी—सुदेवी कुञ्ज के उत्तरमें कस्तुर्य्यानन्दद नामक कुञ्ज है वहाँपर आनन्द से सदा कस्तुरी मञ्जरी निवास करती है। ३२०

जिनकी अङ्गकान्ति शुद्ध हेमके समान है। और वसन काच के तुल्य है । मणीन्द्र मण्डन से सुशोभिता रहती है, श्रीखण्ड सेवन में निरन्तर उत्सुका है । ३२१

वयस त्रयोदश वर्षीया है, स्वभाव में वामा मृद्वी है। कलि में गौर रसमें श्रीकृष्णदास कविराज आख्या प्राप्त की है । ३२२

❋ श्रीकृष्ण स्वरूपनिरूपणं सम्पूर्णम् ❋

❋ इति श्रीश्रीगौर गोविन्दार्चन-स्मरण-पद्धतिः समाप्ता ❋
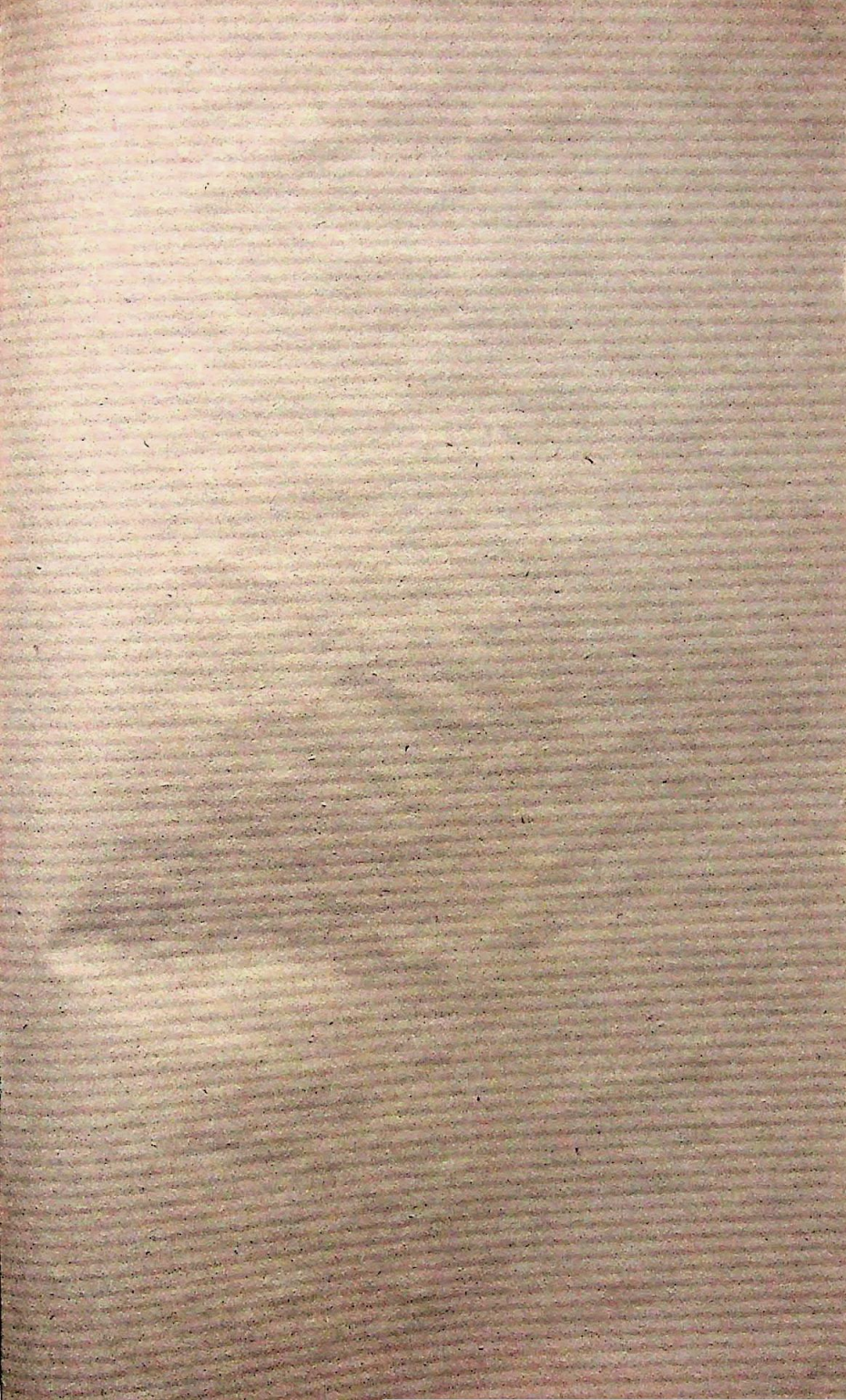
मुद्रित ग्रन्थ—

१ श्रीनृसिंह चतुर्द्दशी

२ श्रीसाधनामृत चन्द्रिका

३ श्रीगौर-गोविन्दार्च्चन पद्धति

प्रकाशनरत ग्रन्थ—

१ श्रीगोविन्द लीलामृत (मूल, टीका, अनुवाद)

२ श्रीसाधनामृत चन्द्रिका (वङ्ग भाषा छन्दोवद्ध)

३ श्रीगोविन्द वृन्दावनम् (सपरिकर श्रीराधागोविन्दस्वरूप वर्णनात्मक ग्रन्थ)

प्राप्ति स्थान

श्रीहरिदास शास्त्री
श्रीहरिदास निवास
कालीदह–वृन्दावन ।